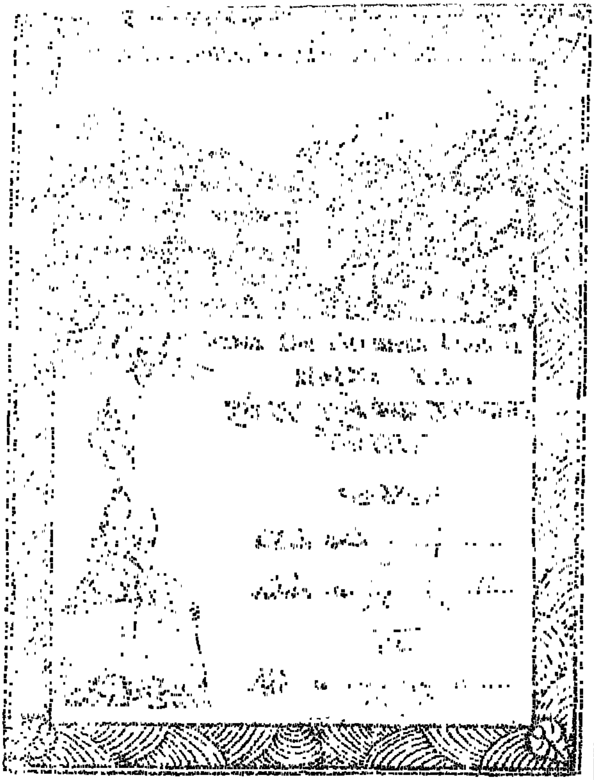


मिस्टर रमेशचन्द्र दत्त

लिखित

प्राचीन भारतवर्ष की

सभ्यता का इतिहास

तीसरा भाग

बाबू श्यामसुन्दर दास जी द्वारा सम्पादित

तथा

बाबू गोपालदासजी द्वारा

सरल हिन्दी में अनुवादित

माधो प्रसाद

(पुस्तक कार्यालय, धर्मकूप काशी)

Printed by Rameshwar Pathak, at the Tara Printing Works, Benares.

द्वितीय बार १९२४ मूल्य १।)

अध्यायों की सूची।

बौद्ध काल।

प्राचीन भारतवर्ष की सभ्यता का इतिहास।

तीसरा भाग

काण्ड ४

बौद्ध काल, ईसा से ३२० वर्ष पहिले से सन् ५०० ईस्वी तक।

अध्याय १

चंद्रगुप्त और अशोक।

यूनानी सिकन्दर की मृत्यु से प्राचीन संसार के इतिहास में एक नया काल आरम्भ होता है। भारतवर्ष में भी इस समय से एक नये काल का आरम्भ होता है। इस नये काल में एक बड़ी राजकीय घटना यह हुई कि चन्द्रगुप्त की बुद्धि से समस्त उत्तरी भारतवर्ष पहिले पहिल एक छत्र के नीचे लाया गया। इस काल की धर्म्मसम्बन्धी एक बड़ी घटना यह हुई कि गौतम बुद्ध के जिस धर्म्म का, अब तक केवल नम्र और नीचे की श्रेणी के लोगों में प्रचार हो रहा था, उसे चन्द्रगुप्त के पोते प्रसिद्ध अशोक ने ग्रहण किया और उसका भारतवर्ष में तथा भारतवर्ष के बाहर भी उपदेश और प्रचार किया।

स्वयं चन्द्रगुप्त के विषय में हम अन्यत्र लिख चुके हैं। उसका राज्य सारे उत्तरी भारतवर्ष में बिहार से लेकर पञ्जाब तक फैला हुआ था। उसने यूनानियों को पञ्जाब से निकाल

दिया, सिन्ध नदी के उस पार का देश उन लोगों से छीन लिया और अन्त में पश्चिमी एशिया में सिकन्दर के उत्तराधिकारी सिल्यूकस के साथ मिलाप कर लिया। चन्द्रगुप्त ने जिन देशों को जीता था उन्हें सिल्यूकस ने उसके पास रहने दिया और इस बड़े हिन्दू सम्राट के साथ अपनी पुत्री का विवाह भी कर दिया।

हम यह भी देख चुके हैं कि चन्द्रगुप्त के पास छः लाख पैदल और तीस हज़ार घुड़सवारों की सेना थी और उसके कर्म्मचारी लोग नगर और गांव के प्रबन्ध को भली भांति करते थे। वाणिज्य, व्यापार, और खेती की रक्षा की जाती थी, सिंचाई का उत्तम प्रबन्ध किया जाता था और जंगल रक्षित रक्खे जाते थे। एक यूनानी राजदूत ने जो कि चन्द्रगुप्त के दर्बार में रहा था, आश्चर्य और प्रशंसा के साथ लिखा है कि देश के अधिक भाग में सिंचाई का प्रबन्ध होने के कारण इस देश में अकाल पड़ता ही नहीं था और बोई हुई भूमि के पास ही युद्ध और लड़ाइयां होती थीं परन्तु युद्ध करने वालों में से कोई भी किसान वा उसकी खेती को कोई हानि नहीं पहुंचाता था। चन्द्रगुप्त के हिन्दू राज्य का बल और विस्तार, उसके राज्य में जान और माल की रक्षा, और उस प्राचीन समय में खेती और सिंचाई के प्रबन्ध की उत्तम दशाओं का वर्णन ऐसा है जिसे आज कल का प्रत्येक हिन्दू उचित अभिमान के साथ स्मरण करेगा।

ईसा के लगभग २९० वर्ष पहिले चन्द्रगुप्त का पुत्र बिंदुसार उसका उत्तराधिकारी हुआ और ईसा के २६० वर्ष पहिले बिन्दुसार का उत्तराधिकारी प्रसिद्ध अशोक हुआ।

आर्यों के भारतवर्ष में आकर बसने के समय से अब तक

ऐसा प्रतापी कोई राजा नहीं हुआ था और इसके उपरान्त भी उस से बढ़कर प्रतापी कोई नहीं हुआ। परन्तु अशोक अपने राज्य और अपने अधिकार के विस्तार के कारण इतना विख्यात नहीं है जितना कि अपने उदार और सहज स्वभाव के कारण, जो कि उसके राज्य प्रबन्ध तथा विदेशियों के साथ उसके व्यवहार में पाया जाता है, और सत्य में बड़ा प्रेम होने तथा सत्य के प्रचार की अभिलाषा के कारण, जिसने कि साइबेरिया से लेकर लङ्का तक इसका नाम घर घर में प्रसिद्ध कर दिया है। भारतवर्ष के किसी सम्राट का, यहां तक कि विक्रमादित्य का भी नाम ऐसा विख्यात नहीं है और किसी सम्राट ने सच्चाई और पुण्य में उत्साह के कारण संसार के इतिहास पर ऐसा प्रभाव नहीं डाला है।

कहा जाता है कि अपने पिता के राज्य काल में अशोक उज्जैनी के राजप्रतिनिधि के पास भेजा गया था। यदि हम "अशोक अवदान" के ग्रन्थकार को ठीक समझें तो अशोक एक ब्राह्मणी रानी सुभद्राङ्गी से उत्पन्न हुआ था। यही ग्रन्थकार लिखता है कि अशोक अपनी युवावस्था में बड़ा उपद्रवी था और इस कारण वह पश्चिमी सीमा प्रदेश में एक बलवे को शान्त करने के लिये भेजा गया था जो कि तक्षशिला में हुआ था और जिसको कि उसने बड़ी सफलता के साथ शान्त किया। बिन्दुसार की मृत्यु पर अशोक राजगद्दी पर बैठा और उसके गद्दी पर बैठने का समय ईसा के लगभग २६० वर्ष पहिले माना जाता है।

उत्तरी और दक्षिणी बौद्धों के ग्रन्थों में अशोक के राज्य के विषय में बहुत कम प्रामाणिक बातें हैं। लंका की पुस्तकों में लिखा है कि अशोक ने राजगद्दी पाने के पहिले अपने ९९

भाइयों को (तारानाथ के अनुसार उसके केवल छः भाई थे) मार डाला और अशोक अवदान में लिखा है कि बौद्ध होने के पहिले वह अपने कर्म्मचारियों और उनकी स्त्रियों को मार डालता था और बहुतेरे निरपराधियों के साथ बड़ी निर्दयता करता था । ये कथाएं बिलकुल निर्म्मल हैं और वे केवल बौद्ध धर्म्म के महत्व को बढ़ाने के लिये गढ़ी गई हैं कि बौद्ध होने के पहिले अशोक का आचरण ऐसा कलंकित था ।

हम लोगों के लिये हर्ष का विषय है कि इस बड़े सम्राट की सूचनाएं हमें अब तक प्राप्त हैं और वे उत्तर काल के कवियों और इतिहास लेखकों की नाईं कपोलकल्पित कथाएं नहीं हैं, वरन् वे चट्टानों गुफाओं और स्तूपों पर उसीकी आज्ञा से उसी के समय में उस समय की भाषा और अक्षरों में खुदी हुई हैं । इन शिला लेखों से जो ऐतिहासिक बातें विदित होती हैं उन्हें फ्रान्स के प्रसिद्ध विद्वान सेनार्ट ने बड़ी विद्वत्ता और बुद्धिमानी से संग्रहीत किया है और हम उनके "ले इन्सक्रप्शन डी पियदसी" नामक ग्रन्थ से कुछ बातों की आलोचना करेंगे ।

चट्टानों पर की १४ सूचनाएं अशोक के राज्याभिषेक के १३ वें और १४ वें वर्ष की खुदी हुई जान पड़ती हैं और स्तूपों पर की आठ सूचनाएं २७ वें और २८ वें वर्षों की खुदी हुई हैं । स्तूपों की अन्तिम सूचना इस बड़े सम्राट के विचारों और इच्छाओं का अन्तिम लेख है जो कि अब हमलोगों को प्राप्त है । गुफाओं की सूचना समय के क्रम से चट्टानों और स्तूपों के बीच की हैं ।

दीपवंश और महावंश में लिखा है कि अशोक ने अपने राज्याभिषेक के चौथे वर्ष में बौद्ध धर्म्म ग्रहण किया । परन्तु

सेनार्ट साहब स्वयं इन शिलालेखों से सिद्ध करते हैं कि उसने इस धर्म्म को अपने राज्याभिषेक के नौवें वर्ष में और कलिङ्ग विजय करने के उपरान्त ही ग्रहण किया था। यह कलिङ्ग के युद्ध की निर्दयता और मार काट ही थी जिसने इस दयालु और परोपकारी सम्राट के हृदय पर एक बड़ा प्रभाव डाला और उसे गौतम का दयालु और कोमल धर्म्म ग्रहण करने के लिये उत्साहित किया। इसके दो वर्षों के उपरान्त अर्थात् अपने राज्याभिषेक के ग्यारहवें वर्ष में अशोक पुनः दूसरी बार बौद्ध बनाया गया अर्थात् उसने पहिले की अपेक्षा अधिक उत्साह के साथ इस धर्म्म के प्रचार की प्रतिज्ञा की। और तेरहवें वर्ष से उसने अपने विस्तृत राज्य के सब भागों में अपनी सूचनायें खुदवाई।

इन शिलालेखों से हमें विदित होता है कि उनके खोदने के समय अशोक के भाई और बहिन जीवित थे और इस कारण यह कथा झूठ समझी जानी चाहिये कि अशोक ने राजगद्दी पाने के लिये अपने भाइयों को मार डाला। इस सम्राट की कई रानियाँ थीं और एक शिलालेख में उसकी दूसरी रानी (द्वितिया देवी) की उदारता का उल्लेख है। इस राज्य की राजधानी पाटलीपुत्र थी परन्तु उज्जयिनी, तक्षशीला, तोसली और समापा का भी अधीनस्थ नगरों की नाईं उल्लेख पाया जाता है। सारा उत्तरी भारतवर्ष इस सम्राट के राज्य में था।

उत्तरी भारतवर्ष की सीमा के बाहर की चौदह जातियाँ (आपरान्त) भी उसके अधीन थीं। इनमें (बेक्ट्रिया के) यवन लोग, (काबुल के) कम्बोज़ लोग, (कन्धार के) गांधार लोग, राष्ट्रिक लोग (सौराष्ट्र और महाराष्ट्र लोग) और

पेटेनिक लोग (अर्थात् दक्षिण के पैथन या प्रतिष्ठान लोग), (दक्षिण के) अन्ध्र लोग, (दक्षिण के) पुलिन्द लोग, (मालवा के) भोज लोग, और नाभक और नाभपन्ति लोगों का उल्लेख है । इस प्रकार दक्षिण भारतवर्ष में कृष्णा नदी तक और पश्चिम में काबुल, कन्धार और बेक्ट्रिया तक का देश इस बड़े सम्राट के आधीन था ।

आस पास की अन्य स्वतंत्र जातियों का भी "प्रात्यन्त" के नाम से उल्लेख किया गया है । इनमें चोल, पाँड्य और केरालपुत जाति (जो सब कृष्णा नदी के दक्षिण में थीं) तथा पाँचो यूनानी राज्य भी सम्मिलित हैं ।

अशोक के राज्यप्रबन्ध का वृत्तान्त शिलालेखों से बहुत कम विदित होता है । हमको पुरुषों अर्थात् राजा के कर्म्मचारियों महामात्रों अर्थात् आज्ञापालन करनेवाले कर्मचारियों, धर्म्ममहामात्रों अर्थात् उन कर्मचारियों का जो विशेषतः धर्म का प्रचार और धर्माचरण का पालन किए जाने के लिये नियत थे, प्रादेशिकों अर्थात् प्रदेशों के पैत्रिक सर्दारों और आधुनिक राव, रावलों और ठाकुरों के पुरखाओं का जो कि भारतवर्ष में सैनिक राज्यप्रणाली के कारण सदा बहुतायत से रहे हैं, उल्लेख मिलता है । इनके अतिरिक्त अन्तमहामात्रों अर्थात् सीमा प्रदेश के कर्मचारियों, प्रातिवेदकों अर्थात् भेदियों, और रज्जुकों अर्थात् उन लोगों का जो धर्मयुतों को धर्म की शिक्षा देने के लिये नियत थे, उल्लेख भी मिलता है ।

अनुसन्यान एक धार्मिक सभा थी जिसमें कि सब धर्मयुत लोग बुलाए जाते थे और उनमें रज्जुक लोग शिक्षा देने का अपना विशेष कार्य करते थे । हमलोग जानते हैं कि इस प्रकार का बौद्धों का समागम सर्वत्र के लिये प्रत्येक पांचवें वर्ष

होता था परन्तु यह सर्वमान्य नियम नहीं था। यह अनुसन्धान स्वयं सम्राट के राज्य में पांचवें वर्ष होता था। परन्तु उज्जयिनी और तक्षशीला में वह तीसरे वर्ष होता था।

सहसराम के शिलालेख में यह लिखा है कि बौद्ध होने पर अशोक ने (निस्सन्देह ब्राह्मणों का बौद्ध सन्यासियों के समान सम्मान करने के कारण) ब्राह्मणों के देव तुल्य सम्मान को छीन लिया। उसके इस उचित कार्य्य की झूठ मूठ कथाएं गढ़ डाली गई हैं कि वह ब्राह्मणों का वध करता था, परन्तु यह धार्मिक सम्राट इस पाप से पूर्णतया रहित है। इसी शिलालेख तथा रूपनाथ के शिलालेख में भी यह उल्लेख है कि अशोक ने उस समय के जाने हुए सब देशों में धर्मोपदेशकों (विबुधों) को भेजा। भब्र के शिलालेख में अशोक ने बौद्धों की तीनों बातों अर्थात् बुद्ध, धर्म्म और सङ्घ में अपना विश्वास प्रगट किया है।

अब हम स्वयं शिलालेखों का वर्णन करते हैं और हम पहिले चट्टानों पर की सूचनाओं से प्रारम्भ करेंगे।

भारतवर्ष के पांच भिन्न भिन्न भागों में पांच चट्टानों पर अशोक की एक ही आज्ञावली के पांच पाठ खुदे हुए हैं। उनमें से एक कपुर्द गिरि के निकट है जो कि सिन्ध के तट पर अटक से लगभग २५ मील उत्तर-पश्चिम है, दूसरा खालसी के निकट जमुना के तट पर ठीक उस स्थान पर है जहां कि यह नदी हिमालय पर्वतकी ऊंची श्रेणी को छोड़ती है, तीसरा गुजरात में गिरनार पर है जो कि प्रसिद्ध सोमनाथ से लगभग ४० मील उत्तर है, चौथा उड़ीसा में धौली पर है जो कटक से २० मील दक्षिण है और पाँचवाँ चिल्का झील के निकट जौगढ़ पर है जो आधुनिक गंजाम नगर से १८ मील उत्तर-पश्चिम की ओर है।

ये चौदहों सूचनाएं भारतवर्ष के इतिहास के प्रत्येक जानने वाले के लिये इतनी उपयोगी हैं कि हम यहां पर उनका पूरा अनुवाद देना आवश्यक समझते हैं । पहिले पहिल उनका अनुवाद जेम्स प्रिन्सेप साहब ने किया था और उनके उपरान्त विल्सन, बर्नफ, लेसन, कर्न और सेनार्ट साहबों ने इस अनुवाद को संशोधित किया है । सेनार्ट साहब का अनुवाद सबसे नवीन है और उन्हीं के आधार पर हम निम्न लिखित अनुवाद देते हैं । यह लिखना कदाचित आवश्यक नहीं है कि इन सूचनाओं में अशोक अपने को पियदसी कहता है—

सूचना १ ।

यह सूचना देवताओं के प्यारे राजा पियदसी की आज्ञा से खुदवाई गई है । यहां इस पृथ्वी पर कोई किसी जीवधारी जन्तु को बलिदान अथवा भोजन के लिये न मारे । राजा पियदसी ऐसे भोजन में बहुत से पाप देखता है । पहिले ऐसे भोजन की आज्ञा थी और देवताओं के प्रिय राजा पियदसी के रसोई घर में तथा देवताओं के प्रिय राजा पियदसी के भोजन के लिये प्रति दिन हजारों जीव मारे जाते थे । जिस समय यह सूचना खोदी जा रही है उस समय उसके भोजन के लिये केवल तीन जीव अर्थात् दो पक्षी और एक हिरन मारे जाते हैं और उन में से हिरन नित्य नहीं मारा जाता । भविष्यत में ये तीनों जीव भी नहीं मारे जांयगे ।

सूचना २ ।

देवताओं के प्रिय राजा पियदसी के राज्य में सर्वत्र और सीमा प्रदेश में रहने वाली जातियों तथा चोल, पंड्य, सत्यपुत्र और केरलपुत्र के राज्यों में तम्बपन्नी तक, यूनानियों के राजा

एन्टिओकस और उसके आसपास के राजाओं के राज्य में सर्वत्र देवताओं के प्रिय राजा पियदसी ने दो प्रकार की औषधियों के दिये जाने का प्रबन्ध किया है अर्थात् मनुष्यों के लिये औषधि और पशुओं के लिये औषधि। जहां कहीं मनुष्यों और पशुओं के लिये लाभदायक पौधे नहीं होते वहां वे ले जा कर लगाये गए हैं और सर्व साधारण के मार्गों में मनुष्यों और पशुओं के लिये कुएं खोदवाए गये हैं।

सूचना ३।

देवताओं के प्रिय राजा पियदसी ने इस भांति कहा। अपने राज्याभिषेक के बारहवें वर्ष में मैंने इस प्रकार आज्ञाएं दीं। मेरे राज्य में सर्वत्र धर्मयुत, राजुक और नगरों के राज्याधिकारी पाँच वर्ष में एक बार एक सभा (अनुसन्धान) में एकत्रित हों और अपने कर्तव्य के अनुसार इस प्रकार धर्म की शिक्षाएं दें "अपने पिता, माता, मित्रों, संगियों और सम्बन्धियों की धर्मयुत सेवा करना अच्छा और उचित है, ब्राह्मणों और श्रामनों को भिक्षा देना, प्राणियों के जीवन का सत्कार करना और अपव्यय तथा कटु वचन से बचना अच्छा और उचित है"। तब राजुक धर्मयुतों को मन और वाक्य से विस्तार पूर्वक शिक्षा देगा।

सूचना ४।

प्राचीन समय में कई सौ वर्षों तक जीवों का वध, पशुओं पर निर्दयता, सम्बन्धियों के सत्कार का अभाव और ब्राह्मणों और श्रामनों के सत्कार का अभाव चला आया है परन्तु आज राजा पियदसी ने जो कि देवताओं का प्रिय और धर्म काज में बड़ा भक्त है ढिंढोरा पिटवा कर और लाव लशकर

हाथी मशाल और स्वर्गीय वस्तुओं को अपनी प्रजा को देखला कर धर्म को प्रगट किया ।

देवताओं के प्रिय राजा पियदसी को इन धर्म्म शिक्षाओं के प्रचार के लिये धन्यवाद है कि आज जीवधारी पशुओं का सत्कार, उनके लिये दया, सम्बन्धियों ब्राह्मणों और श्रमनों के लिये सत्कार, माता पिता की आज्ञा का भक्ति के साथ पालन और वृद्धों का आदर होता है जैसा कि कई शताब्दियों तक नहु रहा । अन्य विषयों की नाईं इस विषय में भी धर्म्म का विचार किया गया है और देवताओं का प्रिय राजा पियदसी इसके बराबर प्रचलित रक्खेगा । देवताओं के प्रिय राजा पियदसी के पुत्र, पौत्र और परपौत्र इस धर्म्म के प्रचार को सृष्टि के अन्त तक रक्षित रक्खेंगे । धर्म्म और भलाई में दृढ़ रह कर वे लोग धर्म की शिक्षा देंगे । क्योंकि धर्म्म की शिक्षा देना सब कार्य्यों से उत्कृष्ट है और भलाई के बिना कोई धर्म्म का कार्य नहीं होता । धार्म्मिक प्रेम का दृढ़ होना और उसकी वृद्धि होना वांछनीय है । इस उद्देश्य से यह शिलालेख खुदवाया गया है कि वे लोग अपने को इस सर्वोच्च भलाई के कार्य में लगावें और उसकी अवनति न होने दें । देवताओं के प्रिय राजा पियदसी ने इसको अपने राजगद्दी पर बैठने के बारह वर्ष पीछे खुदवाया है ।

सूचना ५

देवताओं का प्रिय राजा पियदसी इस भांति बोला । पुण्य करना कठिन है और जो लोग पुण्य करते हैं वे कठिन कार्य्य करते हैं । मैंने स्वयं बहुत से पुण्य के कार्य्य किये हैं । और इसी भांति मेरे पुत्र, पौत्र और मेरी सब से अन्तिम सन्तति कल्पान्त तक पुण्य के कार्य्य करेगी । और जो इस

कार्य करने में चूकेगा वह पाप का भागी होगा। पाप करना सहज है। देखो प्राचीन समय में धर्म का प्रबन्ध करने वाले कर्मचारी (धर्म महामात्र) नहीं थे। परन्तु मैंने अपने राज्याभिषेक के १३ वें वर्ष में धर्म के प्रबन्ध करने वाले नियत किए हैं। थे लोग सब सम्प्रदाय के लोगों से धर्म के स्थापित करने और उन्नति करने के लिये और धर्मयुतों की भलाई करने के लिये मिलते हैं। वे यवन, कम्बोज, गान्धार, सौराष्ट्र, पैतेनिक, और सीमा प्रदेश की अन्य (अपारान्त) जातियों के साथ मिलते हैं। वे योधाओं और ब्राह्मणों के साथ, गरीब अमीर और वृद्धों के साथ, उनकी भलाई और सुख के लिये और सत्य धर्म के अनुयायियों के मार्ग को सब विघ्नों से रहित करने के लिये मिलते हैं। जो लोग बन्धनों में हैं उन्हें वे सुख देते हैं, और उनकी बाधाओं को दूर करके उन्हें मुक्त करते हैं, क्योंकि उन्हें अपने कुटुम्ब का पालन करना पड़ता है, वे धोखे का शिकार हुए हैं और वृद्धा अवस्था ने उन्हें आ घेरा है। पाटलिपुत्र तथा अन्य नगरों में वे मेरे भाई बहिनों और अन्य सम्बन्धियों के घर में यत्न करते हैं। सर्वत्र धर्ममहामात्र लोग सबके धर्म के अनुयायियों, धर्म में लगे हुए और धर्म में दृढ़ लोगों और दान करने वालों के साथ, मिलते हैं। इसी उद्देश्य से यह सूचना खोदवाई गई है।

सूचना ६

देवताओं का प्रिय राजा प्रियदर्शी इस प्रकार बोला। प्राचीन समय में हर समय कार्य करने और विवरण सुनने की ऐसी प्रणाली कभी नहीं थी। इसे मैंने ही किया है। हर समय, खाने के समय, विश्राम के समय, शयनागार में, एकान्त में, अथवा वाटिका में, सर्वत्र वे कर्मचारी लोग मेरे पास

आते जाते हैं जिन्हें कि मेरी प्रजा के काम काज के विषय की सूचना का भार दिया गया है और मैं अपनी प्रजा के सम्बन्ध की बातें उनके द्वारा कहला देता हूँ। स्वयं मेरे मुख से कही हुई शिक्षाओं को मेरे धर्ममहामात्र लोग प्रजा से कहते हैं। इस प्रकार मैंने यह आज्ञा दी है कि जहाँ कहीं धर्मोपदेशकों की सभाओं में मतभेद वा झगड़ा हो उसकी सूचना मुझे सदा मिलनी चाहिये क्योंकि न्याय के प्रबन्ध में जितना उद्योग किया जाय थोड़ा है। मेरा यह धर्म है कि मैं शिक्षा द्वारा लोगों की भलाई करूं। निरन्तर उद्योग और न्याय का उचित प्रबन्ध सर्व साधारण के हित की जड़ है और इससे अधिक फलदायक कुछ नहीं है। अतएव मेरे सब यत्नों का एक यही उद्देश्य अर्थात् सर्व साधारण से इस प्रकार उऋण होना है। मैं यहाँ इसके नीचे उन्हें इतना सुखी रखता हूँ जितना कि मेरे किये हो सकता है। वे भविष्यत में स्वर्ग में सुख पावें। इसी उद्देश्य से मैंने यह सूचना यहां खुदवाई है कि वह बहुत समय तक बनी रहे और मेरे पुत्र पौत्र और परपौत्र मेरी नाईं सर्व साधारण का हित करें। इस बड़े उद्देश्य के लिये बहुत ही अधिक उद्योग की आवश्यकता है।

सूचना ७

देवताओं के प्रिय राजा पियदसी की यह बड़ी अभिलाषा है कि सब स्थानों में सब जातियां अपीड़ित रहें, वे सब समान रीति से इन्द्रियों का दमन करें और आत्मा को पवित्र बनावें परन्तु मनुष्य अपनी संसारी बातों में अधीर हैं। इस कारण लोग जिन बातों को मानते हैं उनके अनुसार कार्य्य पूर्ण रीति से नहीं करते और जो लोग बहुत सा दान नहीं देते वे भी अपनी इन्द्रियों को दमन और आत्मा को पवित्र कर सकते हैं

और अपनी भक्ति में कृतज्ञता और सचाई रख सकते हैं; और यही प्रशंसनीय है।

सूचना ८

प्राचीन समय में राजा लोग अहेर खेलने जाया करते थे, यहां इस भूमि के नीचे वे अपने जी बहलाने के लिये शिकार तथा अन्य प्रकार के खेल करते थे। मैं, देवताओं के प्रिय राजा पियदसी, ने अपने राज्याभिषेक के १० वर्षों के उपरान्त सत्य ज्ञान को प्राप्त किया। अतएव मेरे जी बहलाने के कार्य्य ये हैं अर्थात् ब्राह्मणों और श्रामनों से भेंट करना और उनको दान देना, वृद्धों से भेंट करना, द्रव्य बांटना, राज्य में प्रजा से भेंट करना, उन्हें धार्मिक शिक्षा देनी और धार्मिक विषयों पर सम्मति देनी। इस प्रकार देवताओं का प्रिय राजा पियदसी अपने भले कर्मों से उत्पन्न हुए सुख को भोगता है।

सूचना ९

देवताओं का प्रिय राजा पियदसी इस प्रकार बोला। लोग बीमारी में, पुत्र या कन्या के विवाह में, पुत्र के जन्म पर, और यात्रा में जाने के समय भिन्न २ प्रकार के विधान करते हैं। इन अवसरों तथा ऐसेही अन्य अवसरों पर लोग भिन्न २ विधान करते हैं। परन्तु ये असंख्य और भिन्न प्रकार के विधान जिन्हें कि अधिकांश लोग करते हैं, व्यर्थ और निरर्थक हैं। परन्तु इन सब रीतियों को करने की चाल बहुत दिनों से चली आती है, यद्यपि उनका कोई फल नहीं होता। परन्तु इसके विरुद्ध धर्म कार्य्य करना बहुत ही अधिक यश की बात है। गुलामों और नौकरों पर यथोचित ध्यान रखना, और सम्बन्धियों तथा शिक्षकों का सत्कार करना प्रशंसनीय है। जीवों पर दया और ब्राह्मणों तथा श्रामनों को दान देना

प्रशंसनीय है । मैं इन तथा ऐसेही अन्य भलाई के कार्यों के धर्म्म कार्य्य का करना कहता हूँ । पिता वा पुत्र, भाई वा गुरु को कहना चाहिए कि यही प्रशंसनीय है और इसी का साधन तब तक करना चाहिए जब तक कि उद्देश्य प्राप्त न हो । यह कहा जाता है कि दान देना प्रशंसनीय है, परन्तु कोई दान इतना प्रशंसनीय नहीं है जितना कि धर्म्म का दान अर्थात धर्म्म की शिक्षा देनी । इसलिये मित्र, सम्बन्धी वा संगी को यह सम्मति देनी चाहिये कि अमुक २ अवस्थाओं में यह करना चाहिए, यह प्रशंसनीय है । इसमें विश्वास रखना चाहिए कि ऐसे आचरण से स्वर्ग मिलता है और मनुष्य को उत्साह के साथ उसे स्वर्ग का मार्ग समझ कर करना चाहिये ।

सूचना १० ।

देवताओं का प्रिय राजा पियदसी इसके अतिरिक्त किसी प्रकार के यश वा कीर्ति को पूर्ण नहीं समझता कि उसकी प्रजा वर्तमान में और भविष्यत में उसके धर्म्म को माने और उसके धर्म्म के कार्य्य करे । इसी यश और कीर्ति को देवताओं का प्रिय राजा पियदसी चाहता है । देवताओं के प्रिय राजा पियदसी के सब उद्योग आगामी जीवन में मिलने वाले फलों के लिये तथा जीवन मरण से बचने के लिये हैं, क्योंकि जीवन मरण दुःख है । परन्तु इस फल को प्राप्त करना छोटों और बड़ों दोनोंही के लिये कठिन है, जब तक कि वे अपने को सब वस्तुओं से अलग करने का दृढ़ उद्योग न करें । विशेषतः बड़े लोगों के लिये इसका उद्योग करना बड़ा कठिन है ।

सूचना ११ ।

देवताओं के प्रिय राजा पियदसी ने इस प्रकार कहा । धर्म्म के दान, धर्म्म की मित्रता, धर्म्म की भिक्षा, और धर्म्म के

सम्बन्ध के समान कोई दान नहीं है। निम्न लिखित बातें करनी चाहिएं अर्थात् गुलामों और नौकरों पर यथोचित ध्यान रखना, माता और पिता की आज्ञा पालन करना, मित्रों, संगियों, सम्बन्धियों, श्रमनों और ब्राह्मणों की ओर उदार भाव रखना और प्राणियों के जीवन का सत्कार। पिता को पुत्र वा भाई, मित्र, संगी वा पड़ोसी को भी यही शिक्षा देनी चाहिये कि यह प्रशंसनीय है और इसे करना चाहिये। इस प्रकार यत्न करने में उसे इस संसार में तथा आने वाले जीवन में फल प्राप्त होता है, धर्म्म के दान से अनन्त यश मिलता है।

सूचना १२।

देवताओं का प्रिय राजा पियदसी सब पन्थ के लोगों का, सन्यासियों और गृहस्थों दोनों ही का सत्कार करता है। वह उन्हें भिक्षा तथा अन्य प्रकार के दान देकर सन्तुष्ट करता है। परन्तु देवताओं का प्रिय ऐसे दान वा सत्कार को उनके वास्तविक धर्म्म आचरणों की उन्नति के उद्योग के सामने कुछ नहीं समझता। यह सत्य है कि भिन्न २ पन्थों में भिन्न २ प्रकार के पुण्य समझे जाते हैं। परन्तु उन सब का एकही आधार है और वह आधार सुशीलता और सम्भाषण में शान्ति का होना है। इस कारण किसी को अपने पन्थ की बड़ी प्रशंसा और दूसरों के पन्थ की निन्दा नहीं करनी चाहिये, किसी को यह नहीं चाहिये कि दूसरों को बिना कारण हलका समझें परन्तु यह चाहिये कि उनका सब अवसरों पर उचित सत्कार करें। इस प्रकार यत्न करने से मनुष्य दूसरों की सेवा करते हुए भी अपने पन्थ की उन्नति कर सकते हैं। इसके विरुद्ध यत्न करने से मनुष्य अपने पन्थ की सेवा नहीं करता और दूसरों के साथ भी बुरा व्यवहार करता है। और जो कोई अपने पन्थ में

भक्ति रखने के कारण उसकी उन्नति के लिये उसकी प्रशंसा और दूसरे पन्थों की निन्दा करता है वह अपने पन्थ में केवल कुठार मारता है। इसलिये केवल मेल ही प्रशंसनीय है, जिससे कि सब लोग एक दूसरे के मतों को सहन करते और सहन करने में प्रेम रखते हैं। देवताओं के प्रिय की यह इच्छा है कि सब पन्थ के लोगों को शिक्षा दी जाय और उनके सिद्धान्त शुद्ध हों। सब लोगों को, चाहे उनका मत कुछ भी क्यों न हो, यह कहना चाहिये कि देवताओं का प्रिय वास्तविक धर्म्माचरण की उन्नति और सब पन्थों में परस्पर सत्कार की अपेक्षा दान और बाहरी विधानों को कम समझता है। इसी उद्देश्य से धर्म्म का प्रबन्ध करने वाले कर्म्मचारी, स्त्रियों के लिये कर्म्मचारी, निरीक्षक और अन्यान्य कर्म्मचारी लोग कार्य्य करते हैं। इसी का फल मेरे धर्म्म की उन्नति और धर्म्म दृष्टि से उसका प्रचार है।

सूचना १३।

कलिङ्ग का देश, जिसे देवताओं के प्रिय राजा पियदसी ने जीता है बहुत बड़ा है। इसमें लाखों जीव वा लाखों प्राणी गुलाम बनाये गये हैं और लाखों का वध किया गया है। कलिङ्ग विजय करने के समय से देवताओं का प्रिय राजा धर्म्म की ओर फिरा है, धर्म्म में रत है, धर्म्म के लिये उत्सुक है और उसने अपने को धर्म्म के प्रचार में लगाया है, कलिङ्ग विजय करने पर देवताओं के प्रिय को इतना अधिक पश्चात्ताप हुआ। इस देश को जो कि मेरे आधीन नहीं था, विजय करने में मैं देवताओं के प्रिय ने देशवासियों के वध और गुलाम बनाए जाने के लिये बहुत अधिक पश्चात्ताप किया है और उसका प्रभाव मेरे ऊपर बहुत पड़ा है। परन्तु यही बात

है जिसके लिये देवताओं के प्रिय ने बहुत अधिक पश्चात्ताप किया है। सर्वत्र ब्राह्मण या श्रमन, सन्यासी या गृहस्थ लोग रहते हैं और ऐसे लोगों में अधिकारियों के लिये सत्कार, माता पिता की आज्ञा मानना, मित्रों और सम्बधियों से प्रीति नौकरों पर ध्यान रखना और भक्ति में सचाई पाई जाती है। ऐसे मनुष्यों पर कठोरता होती है। उनकी मृत्यु होती है तथा प्रिय लोगों से उनका वियोग होता है। और यदि विशेष रक्षा में रह कर वे स्वयं हानि से बच भी जांय तो भी उनके मित्र, जान पहिचान के लोग, संगी और सम्बन्धी लोग उजड़ जाते हैं, और इस प्रकार उन्हें भी क्लेश उठाना पड़ता है। मैं, जोकि देवताओं का प्रिय हूँ इस प्रकार की कठोरताओं का बड़ा अधिक अनुभव करता और उन पर पश्चात्ताप करता हूँ। कोई ऐसा देश नहीं है जहां कि ब्राह्मण और श्रमन लोग नहीं हैं और किसी देश में कोई ऐसा स्थान नहीं है जहां कि लोग किसी न किसी धर्म्म को न मानते हों। कलिङ्ग देश में इतने अधिक लोगों के डूब जाने, उजड़ जाने, मारे जाने, और गुलाम बनाये जाने के कारण देवताओं का प्रिय इसका आज हजार गुना अधिक अनुभव कर रहा है।

देवताओं का प्रिय सब प्राणियों की रक्षा, जीवन के सत्कार, शान्ति और दया के आचरण का उत्सुक हृदय से अभिलाषी है। इसी को देवताओं का प्रिय धर्म्म का विजय करना समझता है। अपने राज्य तथा उसके सब सीमा प्रदेशों में, जिसका विस्तार कई सौ योजन है, इन्हीं धर्म्म के विजयों में देवताओं का प्रिय बड़ा प्रसन्न होता है। उसके पड़ोसियों में यवनों का राजा एण्टिओकस, और एण्टिओकस के उपरान्त चार राजा लोग अर्थात् टोलेमी, एन्टिगोनस, मेगेस, और सिकन्दर, दक्षिण में तम्बपर्णी नदी तक चोल

और पंड्य लोग और हेनराज विस्मवसी भी, यूनानियों और कम्बोजों में नाभक और नाभपन्ति लोग, भोज और पेतेनिक लोग, अन्ध्र और पुलिन्द लोग—सर्वत्र लोग देवताओं के प्रिय की धार्मिक शिक्षाओं के अनुकूल हैं। जहां कहीं देवताओं के प्रिय के दूत भेजे गए वहां लोगों ने देवताओं के प्रिय की ओर से जिस धर्म के कर्त्तव्यों की शिक्षा द गई उसे सुना और उस धर्म तथा धार्मिक शिक्षाओं से सहमत हुये और सहमत होंगे ....इस प्रकार विजय चारों ओर फैलाई गई है। मुझे अत्यन्त आनन्द प्राप्त हुआ है, धर्म के विजयों से ऐसा सुख ही होता है। पर सच तो यह है कि यह आनन्द एक दूसरी बात है। देवताओं का प्रिय केवल उन फलों को बहुत अधिक समझता है जो कि दूसरे जन्म में अवश्य मिलेंगे। इसी उद्देश्य से यह धार्मिक शिलालेख खुदवाया गया है कि हमारे पुत्र और पौत्र यह न सोचें कि कोसी नवीन विजय की आवश्यकता है, वे यह न विचारें कि तलवार से विजय करना 'विजय' कहलाने योग्य है, वे उन में नाश और कठोरता के अतिरिक्त कुछ न देखें, वे धर्म के विजय को छोड़ कर और किसी प्रकार की विजय को सच्ची विजय न समझें। ऐसी विजय का फल इस लोक में तथा परलोक में होता है। वे लोग केवल धर्म में प्रसन्न रहें, क्योंकि उसीका फल इस लोक और परलोक में होता है।

सूचना १४

यह सूचना देवताओं के प्रिय राजा पियदसी की खोदवाई हुई है। वह कुछ तो संक्षेप में, कुछ साधारण विस्तार की और कुछ बहुत विस्तृत है। अभी सबका एक दूसरे से सम्बन्ध नहीं है क्योंकि मेरा राज्य बड़ा है और मैंने बहुत सी बातें

खोदवाई हैं और बहुत सी बातें अभी और खोदवाऊंगा। कुछ बातें दोहरा कर लिखी गई हैं क्योंकि मैं उन बातों पर विशेष जोर दिया चाहता हूं। प्रति लिपि में दोष हो सकते हैं,—यह हो सकता है कि कोई वाक्य कट गया हो या अर्थ और का और समझा जाय। यह सब खोदने वाले कारीगर का काम है।

ये अशोक की चौदहों प्रसिद्ध सूचनाएं हैं जिनके द्वारा उसने (१) पशुओं के वध का निषेध किया (२) मनुष्यों और पशुओं के लिये चिकित्सा का प्रबन्ध किया (३) पांचवें वर्ष एक धार्मिक उत्सव किये जाने की आज्ञा दी, (४) धर्म की शोभा प्रगट की (५) धर्ममहामात्रों और उपदेशकों को नियत किया, (६) सर्वसाधारण के सामाजिक और गृह सम्बन्धी जीवन के आचरणों की सुधार के लिये आचार शिक्षक नियत किए, (७) सबके लिये धार्मिक अप्रतिरोध प्रगट किया (८) प्राचीन समय के हिंसक कार्यों के स्थान पर धार्मिक सुखों की प्रशंसा की, (९) धार्मिक शिक्षा और सदुपदेश देने की महिमा लिखी (१०) सत्य धर्म के प्रचार करने की कीर्ति और सत्य वीरता की प्रशंसा की (११) सब प्रकार के दानों में धार्मिक शिक्षा के दान को सर्वोत्तम कहा, (१२) सार्वजनिक सम्मति के सम्मान और आचार के प्रभाव सम्बन्धी सिद्धान्तों पर अन्य धर्म के लोगों को अपने मत में लेने की इच्छा प्रगट की (१३) कलिंग के विजय का उल्लेख किया और उन पांच यूनानी राजाओं तथा भारतवर्ष के राज्यों का नाम लिखे जहां कि धर्मोपदेशक भेजे गए थे, और अन्त में (१४) उपरोक्त शिलालेखों का सारांश दिया और सूचनाओं के खोदवाने के विषय में कुछ वाक्य लिखे।

ऐतिहासिक दृष्टि से दूसरी सूचना बड़े काम की है, क्यों कि उसमें सिरिया के एण्टिओकस तथा हिन्दू राज्यों के नाम दिये हैं। पांचवीं सूचना में भी ऐसे नाम हैं और तेरहवीं सूचना में कलिङ्ग के विजय का उल्लेख है जिससे कि बङ्गाल और उड़ीसा का मगध और उत्तरी भारतवर्ष से घनिष्ठ राज्यसम्बन्ध हुआ। इसी सूचना में पांच यूनानी राजाओं के नाम दिये हैं और वह मूल पाठ, जिनमें कि ये नाम आए हैं, उद्धृत किये जाने योग्य है।

"अन्तियोक नाम योन राज, परम च तेन अन्तियोकेन चतुर राजनि, तुरमये नाम, अन्तिकिन नाम, मक नाम, अलिक-सन्दरे नाम।"

ये पांचों नाम सीरिया के एण्टिओकस, ईजिप्ट के टोलेमी, मेसेडन के एण्टिगोनस, साइरीन के मगस, और एपिरस के एलेकज़ाण्डर के हैं। ये सब अशोक के समकालीन थे और अशोक ने उनके साथ सन्धि की थी और उनकी सम्मति से उनके देशों में बौद्ध धर्म्म के प्रचार के लिये उपदेशक भेजे थे। इसी सूचना में भारतवर्ष तथा उसके आसपास के उन राज्यों के नाम भी दिये हैं जहां इसी प्रकार धर्मोपदेशक लोग भेजे गये थे।

उपरोक्त चौदहों सूचनाओं के सिवाय, जो कि कानून या आचार नियमों की भांति प्रकाशित की गई थीं, अशोक ने समय समय पर अन्य सूचनाएं भी खुदवाई थीं और उनमें से कुछ खुदे हुए लेख हम लोगों को मिले भी हैं।

धौली और जौगड़ (जो कटक के दक्षिण-पश्चिम में है) की एक सूचना में तोसली नगर के शासन के लिये दया से भरे हुए नियम लिखे हैं, सब प्रजाओं के लिये धर्माचरण की शिक्षा

दी है और पांचवें वर्ष उस धार्मिक उत्सव को करने के लिये कहा है जिसका उल्लेख ऊपर आया है। उस सूचना में यह भी लिखा है कि उज्जयनी और तक्षशीला में यह उत्सव प्रति तीसरे वर्ष होना चाहिए।

धौली और जौगड़ में एक दूसरी सूचना भी प्रकाशित की गई थी जिसमें तोसली और समापा के शासन के नियम और सीमा प्रदेश के कर्मचारियों के लिये शिक्षा है। दो सूचनाओं का अर्थात् एक तो सहसराम (बनारस के दक्षिण-पूरब) की, और दूसरे रूपनाथ (जबलपूर के उत्तर-पूरब) की सूचनाओं का अनुवाद डाक्टर बुहलर साहब ने किया है। उनमें धार्मिक सत्योपदेश हैं और उनसे विदित होता है कि यह धार्मिक सम्राट २५६ धर्मोपदेशकों (विवुथों) को नियत करके उन्हें चारों ओर भेज चुका था। बैराट (दिल्ली के दक्षिण-पश्चिम) का शिलालेख मगध के धर्मोपदेशकों के लिये है और उसमें अशोक ने बौद्ध त्रैकत्व अर्थात् बुद्ध, धर्म्म और संघ में अपना विश्वास प्रगट किया है। अशोक की दूसरी रानी की एक धार्मिक सूचना इलाहाबाद में मिली है और अशोक के तीन नये शिलालेख मैसूर में मिले हैं।

अब हम गुफाओं के शिलालेखों का वर्णन करेंगे।

निम्न लिखित गुफाओं के शिलालेख मिले हैं अर्थात् गया के १६ मील उत्तर बराबर और नागार्जुनी गुफाओं के, कटक के उत्तर खण्डगिरि की गुफाओं के, और मध्यप्रदेश में रामगढ़ की गुफाओं के शिलालेख। बराबर की गुफाओं के शिलालेख में लिखा है कि इन गुफाओं को अशोक (पियदसी) ने धार्मिक भिक्षुओं को दिया था, और नागार्जुनी की गुफाओं में लिखा है कि इन्हें अशोक के उत्तराधिकारी दशरथ ने दान किया था।

खण्डगिरि और उदयगिरि की गुफाओं में से अधिकांश कलिंग (उड़ीसा) के राजाओं की दान कि हुई हैं।

और अन्त में हम लाटों पर खुदे हुए लेखों के विषय में लिखेंगे। दिल्ली और इलाहाबाद की प्रसिद्ध लाटों ने सर विलियम जोन्स के समय से पुरातत्व वेत्ताओं का ध्यान आकर्षित किया है और वे उनकी चतुराई में बट्टा लगाती रही हैं। अन्त में उन्हें पहिले पहिल प्रिन्सप साहब ने पढ़ा। दिल्ली की दोनों लाट और इलाहाबाद की लाट के सिवाय, तिरहुत में लौरिया में दो लाट और भूपाल में सांची में एक लाट है।

प्रायः सब लाटों में वेही छ सूचनाएं खुदी हुई हैं, पर दिल्ली में फ़ीरोज़शाह की लाट में दो सूचनाएं अधिक पाई गई हैं। स्मरण रहे कि ये सूचनाएं अशोक के राज्याभिषेक के २७ वें और २८ वें वर्ष में प्रकाशित की गई थीं। उनमें इस सम्राट के राजकीय विषयों का बहुत ही कम उल्लेख है, पर उसने सदाचरण और धर्म की शिक्षाओं तथा सर्वसाधारण के हित के लिये जो कार्य किए थे उनके वृत्तान्त से वे भरी हुई हैं। संक्षेप में, इस धार्मिक सम्राट ने (१) अपने धर्म सम्बन्धी कर्मचारियों को उत्साह और धार्मिक चिन्ता के साथ कार्य करने का उपदेश किया है, (२) दया, दान, सत्य, और पवित्रता को धर्म कहा है, (३) आत्म परीक्षा करने और पाप से बचने के लिये जोर देकर उपदेश दिया है, (४) लोगों को धार्मिक शिक्षा देने का कार्य रज्जुकों को सौंपा है और जिन लोगों को फांसी की आज्ञा हो उनके लिये तीन दिन की अवधि दी है (५) भिन्न भिन्न प्रकार के पशुओं के वध का निषेध किया है (६) अपनी प्रजा पर अपना हित प्रगट किया है और सब पंथ के लोगों के बौद्ध होजाने की

आज्ञा प्रगट की है (७) यह आज्ञा प्रगट की है कि उसकी सूचनाएं तथा धर्मोपदेश लोगों को सत्य पथ पर चलने के लिये उद्यत करेंगे और (८) अन्त में, अपने सर्व साधारण के हित के कार्यों और लोगों को धर्म्मोन्नति के उपायों का पुनरुल्लेख किया है और सदाचार की शिक्षा द्वारा लोगों को अपने मत में लाने की आज्ञा दी है। इन आठों सूचनाओं का निम्न लिखित अनुवाद सिनार्ट साहब के अनुसार दिया जाता है—

सूचना १।

देवताओं का प्रिय राजा पियदसी इस प्रकार बोला। अपने राज्याभिषेक के २६ वें वर्ष में मैंने यह सूचना खुदवाई है। धर्म में अत्यन्त उत्साह, कठोर निरीक्षण, पूरी तरह आज्ञा पालन करने और निरन्तर उद्योग के बिना मेरे कर्मचारियों को इस लोक तथा परलोक में सुख पाना कठिन है। पर मेरी शिक्षा को धन्यवाद है कि धर्म के लिये यह चिन्ता और उत्साह बढ़ रहा है और दिन दिन बढ़ेगा। और मेरे उच्च श्रेणी के, मध्यम श्रेणी के तथा नीचे की श्रेणी के कर्म्मचारी लोग उसके अनुसार चलते हैं और लोगों को सत्य मार्ग बतलाते हैं तथा उन्हें हर्षित रखते हैं। और इसी प्रकार मेरे सीमाप्रदेश के कर्म्मचारी (अन्त महामात्र) भी कार्य करते हैं। क्योंकि नियम यह है—

धर्म से शासन, धर्म से क़ानून, धर्म से उन्नति और धर्म से रक्षा।

सूचना २।

देवताओं का प्रिय राजा पियदसी इस प्रकार बोला। धर्म उत्तम है। पर यह पूछा जा सकता है कि यह धर्म क्या

है? धर्म थोड़ी से थोड़ी बुराई और अधिक से अधिक भलाई करने में है। वह दया, दान, सत्य और पवित्र जीवन में है। इस लिये मैंने मनुष्यों, चौपायों, पक्षियों और जल जन्तुओं के लिये सब प्रकार के दान दिए हैं, मैंने उनके हित के लिये बहुत से कार्य किए हैं, यहां तक कि उनके पीने के लिये जल का भी प्रबन्ध किया है और बहुत से अन्य प्रशंसनीय कार्य किए हैं। इस हेतु मैं ने यह सूचना खुदवाई है जिसमें लोग उसके अनुसार चलें और सत्य पथ को ग्रहण करें और यह बहुत काल तक स्थिर रहे। जो इसके अनुसार कार्य करेगा वह भला और प्रशंसनीय कार्य करेगा।

सूचना ३।

देवताओं का प्रिय राजा पियदसी इस प्रकार बोला। मनुष्य केवल अपने अच्छे कर्मों को देखता है और कहता है कि मैं ने यह अच्छा कार्य किया। पर वह अपने बुरे कर्मों को नहीं देखता और यह नहीं कहता कि मैंने यह बुरा कार्य किया, यह पाप है। यह सच है कि ऐसी जांच करना दुखदाई है परन्तु यह आवश्यक है कि अपने मन में यह प्रश्न किया जाय और यह कहा जाय कि ऐसी बातें यथा दुष्टता, निर्दयता, क्रोध और अभिमान पाप हैं। सावधानी से अपनी परीक्षा करते और कहते रहना आवश्यक है कि मैं ईर्षा को स्थान नहीं दूंगा और न दूसरों की निन्दा करूंगा। यह मेरे लिये यहां फलदायक होगा, यथार्थ में यह दूसरे जन्म में और भी लाभदायक होगा।

सूचना ४।

देवताओं का प्रिय राजा पियदसी इस प्रकार बोला। अपने राज्याभिषेक के २६ वें वर्ष में मैं ने यह सूचना खुदवाई

है । मैं ने लाखों निवासियों के लिये रज्जुकोंको नियत किया है । मैंने रज्जुकों को दण्ड देने का अधिकार अपने हाथ में रक्खा है जिस में वे पूरी दृढ़ता और रक्षा के साथ अपना कार्य्य करें और मेरे राज्य के लोगों की भलाई और उन्नति करें । वे उन्नति और दुःख दोनों की बराबर जांच करते रहते हैं और धर्म्मयुतों के साथ वे मेरे राज्य के लोगों को शिक्षा देते हैं कि जिनसे लोग सुख और भविष्यत में मुक्ति प्राप्त कर सकें। रज्जुक लोग मेरी आज्ञा पालन करते हैं पुरुष लोग भी मेरी इच्छा और आज्ञाओं का पालन करते हैं और मेरे उपदेशों का प्रचार करते हैं जिसमें रज्जुक लोग संतोषजनक कार्य्य करें । जिस भांति कोई मनुष्य अपने बच्चे को किसी सचेत दाई को देकर निश्चिन्त रहता है और सोचता है कि मेरा बच्चा सचेत दाई के पास है उसी भांति मैंने भी अपनी प्रजा के हित के लिये रज्जुक लोगों को नियत किया है। और जिसमें वे दृढ़ता और रक्षा के साथ बिना किसी चिन्ता के अपना कार्य्य करें, मैं ने उनको अभियुक्त करने और दण्ड देने का अधिकार स्वयं अपने हाथ में रक्खा है । अभियुक्त करने और दण्ड देने में समान दृष्टि से देखना चाहिए । इसलिये आज की तिथि से यह नियम किया जाता है, कि जिन कैदियों का न्याय हो गया है और जिन्हें फांसी देने की आज्ञा हुई है उनके लिये तीन दिन की अवधि दी जाय । उनको सूचना दी जायगी कि वे तीन दिन तक जीवित रहेंगे न इससे अधिक और न इससे कम । इस प्रकार अपने जीवन की सूचना पाकर वे अपने दूसरे जन्म के हित के लिये दान देंगे अथवा व्रत रक्खेंगे । मेरी इच्छा है कि बन्दीगृह में भी उन्हें भविष्यत का निश्चय दिलाना चाहिए और मेरी यह एक अभिलाषा है कि मैं धर्म्म के कार्यों की उन्नति, इन्द्रियों के दमन और दान का प्रचार देखूं ।

सूचना ५ ।

देवताओं का प्रिय राजा पियदर्सी इस प्रकार बोला। अपने राज्याभिषेक के २६ वर्ष के उपरान्त मैंने निम्न लिखित जीवों के मारे जाने का निषेध किया है अर्थात् शुक, सारिका, अरुन, चक्रवाक, हंस, नन्दिमुख, गैरन, गेलात, (चमगीदड़) अम्बक, पिल्लिक, दड़ि, अनस्थिक मछली, वेदवेयक, गङ्गा नदी के पुपुत, संकुज, कफतसयक, पमनसस, सिमल, संदूक, ओकपिण्ड, पलसत, श्वेत कपोत, ग्राम कपोत और सब चौपाये जो कि किसी काममें नहीं आते और खाए नहीं जाते। बकरी, भेड़ी और शूकरी, जब गाभिन हों वा दूध देती हों वा जब तक उनके बच्चे छः महीने के न हों, न मारी जांय लोगों के खाने के लिये मुर्गी को खिलाकर मोटी नहीं बनाना चाहिए। जीते हुए जानवरों को नहीं जलाना चाहिये। जङ्गल चाहे असावधानी से अथवा उसमें रहने वाले जानवरों को मारने के लिए जलाए नहीं जायंगे। जानवरों को दूसरे जीते हुए जानवर नहीं खिलाए जांयगे। तीनों चतुर्मास्यों की पूर्णिमा को, पूर्णिमा के चन्द्रमा का तिष्य नक्षत्र से और पुनर्वसु नक्षत्र से योग होने पर, चन्द्रमा के चौदहवें और पन्द्रहवें दिन और पूर्णिमा के उपरांत वाले दिन और साधारणतः प्रत्येक उपोसथ दिन में किसी को मछली मारनी वा बेचनी नहीं चाहिए। प्रत्येक पक्षकी अष्टमी चतुर्दशी अमावास्या और पूर्णिमा को और तिष्य पुनर्वसु और तीनो चतुर्मास्यों की पूर्णिमा के दूसरे दिन किसी को सांड़ बकरा, भेड़, सूअर वा किसी दूसरे बधिये किये जाने वाले जानवरों को बधिया नहीं करना चाहिये। तिष्य पुनर्वसु और चतुर्मास्यों की पूर्णिमाओं को और चातुर्मास्यों की पूर्णिमाओं के दूसरे दिन घोड़े वा बैल को

नहीं दागना चाहिए । अपने राज्याभिषेक के २६ वें वर्ष में मैंने २६ बन्दियों को छोड़ दिया है ।

सूचना ६ ।

देवताओं का प्रिय राजा पियदसी इस प्रकार बोला । अपने राज्याभिषेक के १२ वर्ष पर मैंने अपनी प्रजा के लाभ और सुख के लिये (पहिले पहिल) सूचनायें खुदवाईं । मैं यह समझकर प्रसन्न हूँ कि वे लोग इस से लाभ उठावेंगे और धर्म्म में अनेक प्रकार से उन्नति करेंगे और इस भांति ये सूचनायें लोगों के लाभ और सुख का कारण होंगी । मैंने वे उपाय किए हैं जिनसे कि मेरी प्रजा के,—जो मुझसे दूर रहती है और जो मेरे निकट रहती है,—और मेरे सम्बंधियों के भी सुख की उन्नति अवश्य होगी । इसी कारण मैं अपने सब कर्मचारियों पर देख भाल रखता हूँ सब पन्थ के लोग मुझसे अनेक प्रकार के दान पाते हैं । परन्तु मैं उनके धर्म्म परिवर्तन को सबसे अधिक आवश्यक समझता हूँ । मैंने यह सूचना अपने राज्याभिषेक के २६ वर्ष उपरान्त खोदवाई है ।

सूचना ७ ।

देवताओं का प्रिय राजा पियदसी इस प्रकार बोला । प्राचीन समय में जो राजा लोग राज्य करते थे वे चाहते थे कि मनुष्य धर्म्म में उन्नति करें । परन्तु उन की इच्छानुसार मनुष्यों ने धर्म्म में उन्नति नहीं की । तब देवताओं का प्रिय राजा पियदसी इस प्रकार बोला । मैंने सोचा कि प्राचीन समय के राजा लोग यह चाहते थे कि मनुष्य धर्म्म में उन्नति करें परन्तु उनकी इच्छानुसार मनुष्यों ने उन्नति नहीं की अतः मैं किस प्रकार उन्हें सत्य पथ पर ला सकता हूँ । मैं अपनी इच्छानुसार

किस प्रकार धर्म्म में उनकी उन्नति कर सकता हूँ। तब देवताओं का प्रिय राजा पियदसी इस प्रकार बोला। मैंने धर्म्मसम्बन्धी उपदेशों को प्रकाशित करने और धार्म्मिक शिक्षा देने का निश्चय किया जिसमें मनुष्य इनको सुनकर सत्य पथ को ग्रहण करें और उन्नति करें।

सूचना ८।

मैंने धार्म्मिक शिक्षाओं को प्रकाशित किया है और धर्म्म के विषय में अनेक उपदेश दिए हैं जिसमें धर्म्म की शीघ्र उन्नति हो। मैंने लोगों के लिये बहुत से कर्म्मचारी नियत किए हैं उन में से प्रत्येक प्रजा की ओर अपना धर्म्म करने में लगा हुआ है जिसमें कि वे शिक्षा का प्रचार करें और भलाई की उन्नति करें। इस लिये मैं ने हजारों मनुष्य पर रज्जुक लोगों को नियत किया है और यह आज्ञा दी है कि वे धर्म्मयुतों को शिक्षा दें। देवताओं का प्रिय राजा पियदसी इस प्रकार बोला। केवल इसी बात के लिये मैं ने लाटों पर धर्म्म सम्बन्धी लेख खोदवाए हैं, मैंने धर्म्ममहामात्रों को नियत किया है। और दूर दूर तक धर्म्मोपदेशों का प्रचार किया है। देवताओं का प्रिय राजा पियदसी इस प्रकार बोला। बड़ी सड़कों पर मैंने न्यग्रोध के वृक्ष लगवाए हैं जिस में कि वे मनुष्यों और पशुओं को छाया दें, मैंने आम के बगीचे लगवाए हैं, मैंने आधे आधे कोस पर कुएँ खुदवाए हैं और अनेक स्थानों पर मनुष्यों और पशुओं के सुख के लिये धर्मशाला बनवाई हैं। परन्तु मेरे लिये यथार्थ प्रसन्नता की बात यह है कि पहिले के राजा लोगों ने तथा मैंने अनेक अच्छे कार्य्यों से लोगों के सुख का प्रबन्ध किया है परन्तु लोगों को धर्म्म के पथ पर चलाने के एक मात्र उद्देश्य से मैं अपने सब कार्य्य करता हूँ। देवताओं का प्रिय राजा पियदसी

इस प्रकार बोला, मैंने धर्म्म महामात्रों को नियत किया है जिसमें कि वे सब प्रकार से धर्म्म के कार्य्य में यत्न करें और सब पन्थ के लोगों में, सन्यासियों और गृहस्थों में यत्न करें। पूजेरियों, ब्राह्मणों, सन्यासियों, निर्ग्रन्थों और भिन्न भिन्न पन्थ के लोगों के हित का ध्यान भी मेरे हृदय में रहा है और उन सब लोगों में मेरे कर्म्मचारी कार्य्य कर रहे हैं। महामात्र लोग अपने अपने समाज में कार्य्य करते हैं और धर्म्म के प्रबन्धकर्ता लोग प्रायः सब पन्थ के लोगों में कार्य्य करते हैं। देवताओं का प्रिय राजा पियदसी इस प्रकार बोला, ये तथा अन्य कर्म्मचारी मेरे हथियार हैं और वे मेरे तथा रानियों के दान को बांटते हैं, मेरे महल में वे अपने अपने कमरों में अनेक प्रकार से कार्य्य करते हैं। मैं यह भी जानता हूँ कि वे यहां तथा प्रान्तों में मेरे लड़कों के और विशेषतः राजकुमारों के दान को धर्म्मकार्य्यों के साधन और धर्म्म को बढ़ाने के लिये बांटते हैं। इस प्रकार संसार में धर्म्म कार्य्य अधिक होते हैं और धर्म्म के साधन अर्थात् दया और दान, सत्य और पवित्रता उपकार और भलाई की उन्नति होती है। देवताओं का प्रिय राजा पियदसी इस प्रकार बोला। भलाई के अनेक कार्य्य जिन्हें कि मैं करता हूँ उदाहरण की भांति हैं। उनको देखकर सम्बन्धियों और गुरुओं की आज्ञा पालन में, वृद्धों के लिये दया भाव रखने में, ब्राह्मणों और श्रामनों का सत्कार करने में गरीब और दुखियों तथा नौकरों और गुलामों का आदर करने में, लोगों ने उन्नति की है और उन्नति करेंगे। देवताओं का प्रिय राजा पियदसी इस प्रकार बोला। मनुष्यों में धर्म्म की उन्नति दो प्रकार से हो सकती है स्थिर नियमों के द्वारा अथवा उन लोगों में धर्म्म के विचारों को उत्तेजित करने के द्वारा। इन दोनों मार्गों में कठोर नियमों का रखना ठीक नहीं है, केवल हृदय के उत्तेजित करने

ही का इस से अच्छा प्रभाव होता है । दृढ़ नियम मेरी आज्ञाएं हैं यथा मैं विशेष पशुओं के वध का निषेध करूं अथवा और कोई धार्मिक नियम बनाऊँ जैसा कि मैंने किया भी है । परन्तु केवल हृदय के विचारों के परिवर्तन से ही जीवों के ऊपर दया और प्राणियों को वध न करने से विचार में धर्म्म की सच्ची उन्नति होती है । इसी उद्देश्य से मैंने यह लेख प्रकाशित किया है कि वह मेरे पुत्रों और पोत्रों के समय तक स्थिर रहे और जब तक सूर्य्य और चन्द्रमा हैं स्थिर रहे और जिसमें वे मेरी शिक्षाओं के अनुसार चलें । क्योंकि इस पथ पर चलने में मनुष्य यहां तथा परलोक दोनों ही में सुख प्राप्त करता है । मैंने यह सूचना अपने राज्याभिषेक के २७ वें वर्ष खोदवाई है । देवताओं का प्रिय राजा पियदसी इस प्रकार बोला । जहाँ कहीं यह सूचना पत्थर की लाटों पर है वहां वह बहुत समय तक स्थिर रहे ।

यह सूचना बहुत समय तक स्थिर रही है और उस के उपरान्त के दो हजार वर्षों में मनुष्य जाति ने "दया और दान, सत्य और पवित्रता, उपकार और भलाई" की उन्नति करने से बढ़ कर इस संसार ने कोई धर्म्म नहीं पाया है ।

अध्याय २

भाषा और अक्षर ।

अशोक के शिलालेख हमलोगों के लिये ईसा के पहिले तीसरी शताब्दी में उत्तरी भारतवर्ष की भाषा और अक्षरों के जानने के लिये अमूल्य हैं। ये सूचनाएँ निस्सन्देह उसी भाषा में हैं जिसको कि अशोक के समय में लोग बोलते और समझते थे और इन सूचनाओं के ऐसी बोलियों में होने से जिनमें कि भारतवर्ष के भिन्न भिन्न भागों में एक दूसरों से बहुत कम अन्तर है विदित होता है कि इस बड़े सम्राट ने अपने विस्तृत राज्य के जुदे जुदे भागों में अपने नियमों को उसी बोली में प्रकाशित किया है जो देश के उस भाग में बोली जाती थी।

इन शिला लेखों से विदित होता है कि उत्तरी भारतवर्ष की भाषा हिमालय से लेकर विंध्य पर्वत तक और सिन्धु से लेकर गंगा तक मुख्यतः एक ही थी। परन्तु इनमें बहुत थोड़े भेद हैं जिन से कि पुरातत्ववेत्ताओं ने यह जाना है कि उस समय में तीन प्रकार की भाषाएं बोली जाती थीं। जेनरल कनिंगहाम साहब इन्हें पंजाबी वा पश्चिमी भाषा, उज्जैनी वा बीच के देश की भाषा और मागधी वा पूर्वी भाषा के नाम से पुकारते हैं।

पंजाबी भाषा अन्य भाषाओं की अपेक्षा संस्कृत से बहुत मिलती है। उसमें प्रियदर्शी आत्मज इत्यादि शब्दों में "र" रहता है, उसमें संस्कृत रु ऋ ष भी रहते हैं और उसके रूप संस्कृत के रूपों से अधिक मिलते हैं। उज्जैनी भाषा में र और

व दोनों होते हैं, परन्तु मागधी भाषा में र का लोप होकर उस के स्थान पर सदा ल बोला जाता है यथा राजा के स्थान पर लाजा दशरथ के स्थान पर दशलथ इत्यादि ।

इन तीनों भाषाओं को एक मान कर पुरातत्ववेत्ता लोगों ने इस भाषा को पाली समझा है । प्रिन्सेप साहब कहते हैं कि यह भाषा संस्कृत और पाली के बीच की है । विल्सन सहबने अशोक के शिलालेखों के चार भिन्न पाठों की ध्यान पूर्वक परीक्षा की है और उन्हों ने अपनी सम्मति इस प्रकार लिखी है " यह भाषा स्वयं एक प्रकार की पाली है और उसमें अधिकांश शब्दों के रूप आज कल की पाली व्याकरण के रूपों के सदृश हैं । परन्तु उन में बहुत से भेद भी हैं जिनमें से कुछ तो उस भाषा के संस्कृत के साथ अधिक सम्बन्ध होने के कारण हैं और कुछ स्थानिक विशेषताओं के कारण जिससे कि इस भाषा की और भी अनिश्चित दशा विदित होती है । "

लेसन साहब विल्सन साहब से इस बात में सहमत हैं कि अशोक के शिलालेखों की भाषा पाली है और वे यह भी कहते हैं कि पाली संस्कृत की सब से बड़ी बेटी है अर्थात् उत्तरी भारतवर्ष में संस्कृत भाषा की बोल चाल का व्यवहार उठ जाने के उपरान्त यह सब से प्राचीन भाषा है । म्योर साहब इन शिलालेखों की भाषा को उन बौद्धग्रंथों से मिलान करके जो कि लङ्का में ईसा के पहिले तीसरी शताब्दी में भेजे गये थे, इस मत की पुष्टि करते हैं और यह प्रमाणित करते हैं कि वे प्रायः एक ही भाषा अर्थात् पाली भाषा में हैं । बर्नफ और लेसन साहब अपने "एसे सर ल पाली" लेख में लिखते हैं कि पाली भाषा "संस्कृत की बिदाई की सीढ़ी के पहिले कदम पर है और वह उन भाषाओं में सब से पहिली है जिन्हों ने कि इस पूर्ण और उपजाऊ भाषा को नष्ट कर दिया" ।

अतः यह काफी स्पष्ट और ठीक प्रमाण है जो कि भारतवर्ष के इतिहास जानने वाले के लिये अमूल्य है। हमलोग वैदिक काल की भाषा को जानते हैं जो कि ऋग्वेद के सब से सादे और सुन्दर सूत्रों में रक्षित है। हम लोग ऐतिहासिक काव्यकाल की भाषा भी जानते हैं जो कि गद्य ब्राह्मणों और आरण्यकों में रक्षित हैं। १००० ई० पू० के उपरान्त बोलने और लिखने की भाषा में भेद बढ़ने लगा। विद्वत्तापूर्ण सूत्र प्राचीन व्याकरण की संस्कृत में बनाए जाते थे पर लोगों के बोलने की भाषा और जिस भाषा में गौतम ईसा के पहिले छठीं शताब्दी में शिक्षा देता था वह अधिक सीधी और चंचल थी। वह भाषा क्या थी यह हमें अशोक की सूचनाओं से विदित होता है क्योंकि ईसा के ४७७ वर्ष पहिले से जब कि गौतम की मृत्यु हुई उसके २६० वर्ष पहिले तक जब कि अशोक राज्य करता था, बोलने की भाषा में बहुत अधिक अन्तर नहीं हो सकता। अतएव तीसरे अर्थात् दार्शनिक काल की भाषा पाली की एक पूर्व रूप थी, हम उसे चाहे जिस नाम से (मागधी इत्यादि) पुकारें। और उत्तरी भारतवर्ष में चौथे अर्थात् बौद्ध काल में इसी भाषा के भिन्न भिन्न रूप बोले जाते थे।

पाँचवे अर्थात् पौराणिक काल में पाली भाषा में बहुत अधिक अन्तर हो गया और उससे एक दूसरी ही भाषा अर्थात् प्राकृत भाषा बन गई जो कि इस काल के नाटकों में पाई जाती है। पाली की अपेक्षा प्राकृत के शब्दों के रूप में संस्कृत से बहुत अधिक भेद होता है और इतिहास से भी यह बात विदित है कि कालिदास की नायिकाओं के बोलने की भाषा अशोक के बोलने की भाषा से बहुत पीछे के समय की है। पौराणिक काल के समाप्त होने पर एक दूसरा परिवर्तन हुआ और प्राकृत भाषा

और बिगड़ कर उत्तरी भारतवर्ष में लगभग एक हज़ार ईस्वी तक हिन्दी हो गई।

इस प्रकार यह देखा जायगा कि ४००० वर्षों में उत्तरी भारतवर्ष की बोलने की भाषा में बड़े बड़े परिवर्तन हुए हैं। वैदिक काल में वह ऋग्वेद की संस्कृत थी, और ऐतिहासिक काव्यकाल में वह ब्राह्मणों की संस्कृत थी, दार्शनिक और बौद्ध कालों में वह पाली थी। पौराणिक काल में वह प्राकृत थी, और दसवीं शताब्दी में राजपूतों के उदय के समय से वह हिन्दी रही है।

अब हम भारतवर्ष की बोलने की भाषा के विषय को छोड़ कर उसके अक्षरों के विषय में लिखेंगे। इसके विषय में बहुत कुछ लिखा जा चुका है और बहुत से कल्पित अनुमान किए जा चुके हैं।

देवनागरी अक्षर, जिसमें कि अब संस्कृत लिखी जाती है, बहुत ही थोड़े समय के हैं। भारतवर्ष के सब से प्राचीन अक्षर जो कि अब तक मिले हैं, अशोक के शिलालेखों के अक्षर हैं जो कि ईसा के पहिले तीसरी शताब्दी में लिखे गये थे। यहां पर यह कह देना आवश्यक है कि ये शिलालेख दो जुदे जुदे अक्षरों में खुदे हैं, एक तो आज कल की अरबी और फारसी की नाईं दहिनी ओर से बाईं ओर पढ़े जाते हैं और दूसरे आधुनिक देवनागरी और यूरप के अक्षरों की नाईं बाईं ओर से दहिनी ओर को। पहिले प्रकार के अक्षर केवल कपुर्दीगिरि के शिलालेख में तथा बक्ट्रियेना के यूनानी और सीथियन राजाओं के सिक्कों में पाए जाते हैं, और ये एरियेनोपाली अथवा अशोक के उत्तरी अक्षर कहे जाते हैं। दूसरे प्रकार के अक्षर अशोक के और सब शिलालेखों में हैं और वे इण्डो-पाली या अशोक के दक्षिणी अक्षर कहलाते हैं।

एरियेनो पाली अक्षरों की उत्पत्ति भारतवर्ष से नहीं हुई और वे पश्चिमी सीमा प्रदेश को छोड़कर भारतवर्ष में और कहीं प्रचलित नहीं थे। टामस साहब का यह सिद्धान्त ठीक है कि उनकी उत्पत्ति किसी प्रकार भारतवर्ष में नहीं हुई और यह स्पष्ट है कि यह फिनीशियन के समान किसी अक्षर के आधार पर बने हैं। ईसा की पहिली शताब्दी के उपरान्त उनका प्रचार उठ गया।

इसके विरुद्ध इण्डो-पाली अक्षरों का प्रचार भारतवर्ष में सर्वत्र ही नहीं था वरन् उनकी उत्पत्ति भी भारतवर्ष ही से हुई है। हम पहिले कह चुके हैं कि यह दहिनी ओर से बाईं ओर को लिखे जाते हैं और देवनागरी तथा आज कल के भारतवर्ष में के अन्य अक्षरों की उत्पत्ति उन्हीं अक्षरों से हुई है। टामस साहब को यह कहने में कुछ भी सन्देह नहीं है कि ये अक्षर यहीं पर बनाए गए थे और यहीं उनकी उन्नति की गई थी और वे इस वर्णमाला की उत्पत्ति भारतवर्ष से बतलाने में बड़ा ज़ोर देते हैं, क्योंकि बहुत से पुरातत्त्ववेत्ता लोग इस अनुमान में मग्न हैं कि हिन्दुओं ने यूनानियों और फिनीशियन लोगों से अपनी वर्णमाला ली है।

जेनरल कनिंगहाम साहब टामस साहब के इस विचार को पुष्ट करते हैं कि इण्डो-पाली अक्षरों की उन्नति भारतवर्ष में हुई है। उन्होंने साधारणतः अक्षरों की उत्पत्ति, और विशेषतः इण्डो-पाली अक्षरों की उत्पत्ति के विषय में जो कुछ लिखा है वह ऐसा सारगर्भित है कि हम उसे यहां उद्धृत करने में संकोच नहीं करते।

"मनुष्यों ने लिखने का जो पहिला उद्योग किया होगा उसमें जिन वस्तुओं को वे लिखना चाहते थे ठीक उन्हीं का केवल आकार उन्होंने बनाया होगा। इस अवस्था को हम

मेक्सिको के चित्रों में पाते हैं जिन में कि केवल ऐसी वस्तुएं लिखी हैं जो कि आँख से देखी जा सकती हैं। इन चित्रों की लिखावट में प्राचीन ईजिप्ट के लोगों ने यह उन्नति की कि वे पूरे चित्र के स्थान पर केवल उसका अंश लिखने लगे यथा मनुष्य के स्थान पर केवल मनुष्य का सिर और पत्ती के स्थान पर केवल पत्तीका सिर इत्यादि। इस लेख प्रणाली में कुछ चित्रों को उन वस्तुओं के भिन्न रूप देकर उन्नति की गई। अर्थात् सिआर धूर्तता का चिन्ह बनाया गया और बन्दर क्रोध का चिन्ह। इन चिन्हों की और भी उन्नति करके दो हाथों में भाला और ढाल लिख कर वे युद्ध को प्रगट करने लगे, मनुष्य की दो टांगों को लिख कर चलने को प्रगट करने लगे और इसी प्रकार फरसे से खोदने को, आँख से देखने को इत्यादि। परन्तु इन सब बातों से भी चित्रों के द्वारा इस प्रकार विचारों को प्रगट करने की रीति बहुत ही परिमित थी''अतएव यह निश्चय जान पड़ता है कि बहुत ही प्राचीन समय में चित्रों के लिखने की रीति में इतनी उलझन और असुविधा हुई होगी कि ईजिप्ट के पुजेरियों को अपने विचारों को प्रगट करने के लिये कोई अधिक उत्तम रीति की आवश्यकता हुई। जो रीति उन्होंने निकाली वह बड़ी ही अच्छी थी।

"अपने बहुत से चित्रों के चिन्हों में ईजिप्ट के लोगों ने प्रत्येक के लिये एक विशेष उच्चारण नियत किया जिसके लिये पहले एक चित्र था यथा मुख (रु) के लिये उन्होंने र का उच्चारण दिया और हाथ (तू) के लिये उन्होंने त नियत किया।

"ऐसा ही व्यवहार भारतवर्ष में भी जान पड़ता है और इसे हम अभी अशोक के समय के अक्षरों में दिखलाने का यत्न करेंगे जिनको मैं समझता हूँ कि भिन्न भिन्न वस्तुओं के चित्रों से उत्पत्ति हुई है''''''मेरी यह सम्मति है कि भारतव-

के अक्षरों की उत्पत्ति भारतवर्ष से ही हुई है जैसा कि ईजिप्ट के चित्राक्षरों का आविष्कार स्वयं ईजिप्ट के लोगों ने किया है... मैं इसे स्वीकार करता हूँ कि बहुत से अक्षरों के लगभग वैसेही रूप हैं जैसे कि ईजिप्ट के चित्राक्षरों में उन्हीं वस्तुओं के लिये मिलते हैं, परन्तु उनके उच्चारण बिल्कुल भिन्न हैं क्योंकि इन दोनों भाषाओं में उन वस्तुओं के नाम जुदे जुदे अक्षरों से आरम्भ होते हैं।

"यथा दो पैर जो कि चलने में जुदे हो जाते हैं ईजिप्ट में चलने के चिन्ह थे और वेही रूप कम्पास की दोनों भुजाओं की नाईं भारतवर्ष का ग अक्षर है जो कि सब संस्कृत शब्दों में किसी प्रकार की गति या चलने को प्रगट करता है। परन्तु इसी आकार के ईजिप्ट के अक्षर का उच्चारण स है। इसलिये मैं समझता हूँ कि यदि भारतवासियों ने इस अक्षर को कहीं से लिया होता तो भारतवर्ष में भी इस अक्षर का उच्चारण ग के स्थान पर स होना चाहिये था। और वास्तव में यही बात अकेडियन अक्षरों में हुई जब कि उन्होंने एसीरियन लोगों के अक्षरों को लिया।"

जनरल कनिंगहाम साहब का अनुमान है कि इण्डो-पाली के ख अक्षर की उत्पत्ति भारतवर्ष की कुदारी से (खन्=खोदना), य की उत्पत्ति यव से, द की उत्पत्ति दाँत (दन्त) से, ध की धनुष से, प की हाथ (पाँणी) से, म की मुख से, व की वीणाँ से, न की नाक (नाँस) से, र की रस्सी (रज्जु) से, ह की हाथ (हस्त) से, ल की हल (लङ्ग) वा मनुष्य के किसी अङ्ग से, श की कान (श्रवण) से हुई है।

"प्राचीन भारतवर्ष के अक्षरों की इस प्रकार परीक्षा करने में मैंने अशोक के समय अर्थात् २५० ई० पू० के समय

के रूपों को भिन्न भिन्न वस्तुओं या मनुष्य के अङ्गों या चित्रों से मिलान किया है और मेरी इस परीक्षा का फल यह हुआ कि यह निश्चय हो गया कि बहुत से अक्षर अपने सरल रूपों में भी अपनी उत्पत्ति चित्रों से होने के बड़े प्रमाण रखते हैं। इन अक्षरों को ईजिप्ट के अक्षरों से मिलान करने से विदित होता है कि उनमें से बहुत से एक ही वस्तु के प्रायः एक से रूप हैं। परन्तु भारतवर्ष के रूपों का उच्चारण ईजिप्ट के रूपों के उच्चारण से पूर्णतया भिन्न है जिससे यह निश्चय जान पड़ता है कि भारतवासियों ने यद्यपि ईजिप्ट के लोगों की भांति इस विषय में कार्य्य किया तथापि उन्होंने इस कार्य्य को पूर्णतया स्वतन्त्र रीति से किया है और उन्होंने अपने अक्षरों को ईजिप्ट के लोगों से नहीं लिया...

"अब यदि भारतवासियों ने अपने अक्षर ईजिप्ट के लोगों से नहीं लिये हैं तो ये अक्षर स्वयं भारतवासियों के ही बनाए हुए हैं, क्योंकि अन्य कोई ऐसे लोग नहीं थे जिन से कि उन्होंने इन्हें ग्रहण किया हो। उनके सब से निकट के लोग एसियना और फारस के लोग थे जिनमें से एसियना के लोग तो शेमिटिक अक्षर व्यवहार करते थे जिनकी उत्पत्ति फिनीशियन अक्षरों से हुई है। और जो दहिनी ओर से बाँई ओर को लिखे जाते हैं, और फ़ारस के लोग एक त्रिकोणरूपी अक्षरों का व्यवहार करते हैं जो कि जुदी जुदी पाइयों से बने हैं और इनमें भारतवर्ष के अक्षरों के बने रूपों से कुछ भी समानता नहीं है।"

हमने टामस साहब और जनरल कनिंगहाम साहब की सम्मतियाँ उद्धृत की हैं क्योंकि भारतवर्ष के अक्षरों के विषय में इन लोगों से बढ़ कर और किसी ने प्रामाणिक सम्मति नहीं दी है। परन्तु हमारे पाठकों को इस गहन विषय पर अन्य

विद्वानों की सम्मति भी सुनने की इच्छा होगी।

वेबर साहब का मत है कि हिन्दुओं ने अपनी वर्णमाला फिनीशियन लोगों से ली परन्तु उन्होंने अपने अक्षरों को इतना अधिक सुधारा और बढ़ाया कि उनके अक्षरों को हम स्वयं उन्हींका बनाया हुआ कह सकते हैं। मेक्समूलर साहब का मत है कि पांचवीं शताब्दी से अधिक पहिले भारतवासियों में लिखने के अक्षर नहीं थे और उन लोगों ने अपनी वर्णमाला पश्चिम के लोगों से ग्रहण की है। परन्तु राथ साहब जिन्हों ने बहुत समय तक वेदों का अध्ययन किया है अपना दृढ़ विश्वास प्रगट करते हैं कि वेदों की रिचाओं का इतना बड़ा संग्रह केवल कंठाग्र रख कर आज तक रक्षित नहीं रह सकता था। और इस लिये उनका विचार है कि वैदिक काल में लोग लिखना जानते थे। बुहलर साहब का यह मत है कि भारतवर्ष की वर्णमाला जिसमें कि पांच सानुनासिक वर्ण और तीन ऊष्म वर्ण हैं ब्राह्मणों के काल के व्याकरणों में ही बनी होगी। गोल्डस्टूकर साहब का मत है कि जिस समय वेद की रिचाएँ बनीं उस समय लोग लिखना जानते थे और लेसन साहब की सम्मति है कि इण्डो-पाली वा अशोक के दक्षिणी अक्षरों की उत्पत्ति पूर्णतया भारतवर्ष से हुई।

:o:

अध्याय ३

मगध के राजा।

छान्दोग्य उपनिषद् (७, १, २) में नारद कहते हैं "महाशय मैं ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, चौथे अथर्वन वेद, पांचवें इतिहास पुराण इत्यादि को जानता हूँ"। ऐतिहासिक काव्यकाल के ग्रंथों में ऐसे ही ऐसे वाक्यों से विदित होता है कि उस प्राचीन समय में भी राजाओं और उनके वंशों का किसी प्रकार का इतिहास था जो कि इतिहास-पुराण कहलाता था। यदि ये इतिहास हमें ब्राह्मण ग्रंथों में जो कुछ विदित होता है उसके सिवाय थे तो अब बहुत काल हुआ कि उनका लोप हो गया है। सम्भवतः ये इतिहास केवल ज़बानी कथाओं के द्वारा रक्षित रक्खे जाते थे और उन में प्रत्येक शताब्दी में परिवर्तन होता जाता था और दन्तकथाएं मिलती जाती थीं, यहां तक कि लगभग दो हजार वर्ष के उपरान्त उन्होंने इस रूप को ग्रहण किया जिसमें कि हम उन्हें आज कल के पुराणों में पाते हैं। क्योंकि पुराण जो आज कल वर्तमान हैं वे पौराणिक काल में बनाए गए थे और तब से उन में भारतवर्ष में मुसलमानों की विजय के पीछे कई शताब्दियों तक बहुत से परिवर्तन हुए हैं और उनमें बहुत सी बातें बढ़ाई गई हैं।

जब इन पुराणों का सर विलियम जोन्स साहब तथा यूरप के अन्य विद्वानों ने पहिले पहिल पता लगाया तो इस से बड़ी आशा हुई कि उनसे भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास की बहुत सी बातें विदित होंगी। अतः बहुत से प्रसिद्ध विद्वान इस नई खोज में दत्तचित्त हुए और डाक्टर एच. एच. विल्सन साहब ने अङ्गरेजी जानने वालों के लिये विष्णुपुराण का अनुवाद किया

"इस आशा से कि उससे मनुष्य जाति के इतिहास के एक प्रधान अध्याय की सन्तोषदायक पूर्ति हो सकेगी।"

पुराणों में कोशलों के राज्यवंश को सूर्य्यवंश और कुरुलोगों के वंश को चन्द्रवंश कहा है। पुराणों के अनुसार कुरुपञ्चाल युद्ध होने के पहिले सूर्य्यवंश के ९३ राजा और चन्द्रवंश के ४५ राजा हो चुके थे। सन् १२५० ई० पू० को इस युद्ध का समय मानकर जैसा कि हमने किया है, और प्रत्येक राजा के शासन का औसत समय १५ वर्ष मान लेने से यह जान पड़ेगा कि आर्य्य लोगों के गङ्गा की घाटी में बसने और राज्य स्थापित करने का समय १४०० ई० पू० नहीं है जैसा कि हमने माना है वरन् उसका समय कम से कम इस के १००० वर्ष पहिले है। यह जान पड़ेगा कि भारतवर्ष के पुरातत्व वेत्ताओं को ऐतिहासिक काव्य काल १४०० ई० पू० से लेकर १००० ई० पू० तक स्थिर करने के स्थान पर उन्हें इसका समय १५ शताब्दी और पहिले स्थिर करना चाहिए अर्थात् २५०० ई० पू० से १००० ई० पू० तक। और चूंकि वैदिक काल ऐतिहासिक काव्यकाल के पहिले है अतएव उसका समय यदि हम उसके और पहिले न स्थिर करें तो कम से कम ३००० ई० पू० से स्थिर करना चाहिये।

हमने इन बातों को यह दिखलाने के लिये लिखा है कि भारतवर्षीय इतिहास के प्रथम दो काल का जो समय निश्चित किया जाता है वह केवल विचाराधीन है और आगे चल कर अधिक खोज से उनके और भी बढ़ाने की आवश्यकता हो सकती है जैसा कि ईजिप्ट और चेल्डिया के विषय में हुआ है। पुराणों में सूर्य्यवंशी और चन्द्रवंशी राजाओं की जो सूची दी है केवल उन्हीं के आधार पर अभी हम समय बढ़ाना उचित नहीं समझते परन्तु फिर भी ये सूचियाँ बड़े काम की और

बहुत कुछ निर्देश करने वाली हैं। इनसे इस बात का स्मरण होता है कि भारतवर्ष में जातियों और राज्य वंशों का उदय और अस्त केवल थोड़ीसी शताब्दियों में ही नहीं हो सकता, परन्तु उनमें १००० वर्ष वा इस से अधिक समय लगा होगा और वे हमें, यह भी स्मरण दिलाती हैं कि यदि हम ने वैदिक काल का प्रारम्भ होना २००० ई० पू० से मान लिया है तो यह अन्तिम सिद्धान्त नहीं है और आगे चल कर अधिक खोज से कदाचित हमें उसका समय ३००० ई० पू० वा इससे भी पहिले स्थिर करना पड़े।

अब पुराणों की सूची के विषय में यह कहना कदाचित ही आवश्यक है कि उसमें सूर्य्यवंशी राजाओं में हम को रामायण के नायक राम का नाम और चन्द्रवंशी राजाओं में महाभारत के नायक पांचों पाण्डवों के नाम मिलते हैं। चन्द्रवंशी राजाओं में हमें अङ्ग, वङ्ग, कलिङ्ग, सुम्ह, और पुन्ड्र के नाम मिलते हैं जो कि वास्तव में देशों के नाम अर्थात् क्रमात पूर्वी बिहार, पूर्वी बङ्गाल उड़ीसा, टिपरा और उत्तरी बंगाल के नाम हैं। कुरु लोगों के राज्यवंश के वृत्तान्त में पूर्वी भारतवर्ष के उपनिवेशित होने के समय की दन्त कथाएँ भी मिल गई होंगी।

इस प्रकार यह देखा जायगा कि सूर्य्य और चन्द्रवंशी राजाओं के जो इतिहास पुराणों में दिए हैं वे कुछ अंश में तो सत्य और कुछ अंश में दन्तकथा मात्र हैं। इस सम्बन्ध में उनकी समानता संसार के उन इतिहासों से की जा सकती है जिन्हें कि यूरप के पुजेरियों ने मिडिल एजेज़ में कई शताब्दियों में लिखा है। प्रत्येक पुजेरी सृष्टि के आरम्भ से अपना इतिहास आरम्भ करता था जैसा कि प्रत्येक पुराण सूर्य्य और चन्द्र वंशों के स्थापित करने वालों के समय से प्रारम्भ होता है, और

पुराणों के बनाने वालों की नाईं ईसाई पुजेरी भी यहूदियों की ऐतिहासिक कथाओं में कल्पित कथाएं और कौतुक की बातें मिला देते थे और ग्रोज़न लोगों के ब्रिटेन देश को पाने का वृत्तान्त और आर्थर और रोलेण्ड के विषय की दन्तकथाओं को सच्ची ऐतिहासिक घटनाओं के साथ मिला देते थे। फिर भी प्रत्येक प्रसिद्ध पुजेरी के इतिहासों में एक अंश ऐसा है जोकि ऐतिहासिक दृष्टि से अमूल्य है। जब ग्रन्थकार अपने समय के निकट आता था तो वह अपना अपने देश अपने राजा और अपने यहां के मठों का प्रामाणिक वृत्तान्त लिखता था। और इसी प्रकार मानों इस समानता को समाप्त करने के लिये, हम लोग पुराण की कथाओं के अन्त में भी कुछ न कुछ बात ऐसी पाते हैं जो कि इतिहास की दृष्टि से हमारे लिये अमूल्य हैं।

हम कह चुके हैं कि जो पुराण अब वर्तमान हैं वे पौराणिक काल में अर्थात् बौद्ध काल के समाप्त होने के उपरान्त ही संग्रहीत किए गए वा नए रूप में बनाए गए थे। और दार्शनिक तथा बौद्ध कालों में मगध का राज्य भारतवर्ष की सभ्यता का केन्द्र था। इसी कारण पुराणों में हमें इस एक राज्य अर्थात् मगध के विषय में कुछ बहुमूल्य बातें मिलती हैं। हम इस राज्य के विषय में विष्णुपुराण की सूची उद्धृत करेंगे।

"अब मैं तुमसे बृहद्रथ की संतति का वर्णन करूँगा जोकि मगध के (राजा) होंगे। इस वंश में बहुत से प्रबल राजा हुए हैं जिनमें सब से प्रसि॰ जरासन्ध था। उसका पुत्र सहदेव हुआ, उसका पुत्र सोमापि है, उसका पुत्र श्रुतवत होगा, उसका पुत्र अयुतायुस होगा, उसका पुत्र निरमित्र होगा, उसका पुत्र

सुक्षत्र होगा, उसका पुत्र बृहत्कर्म्मन् होगा, उसका पुत्र सेनजित् होगा, उसका पुत्र शत्रुञ्जय होगा, उसका पुत्र विप्र होगा, उसका पुत्र शुचि होगा, उसका पुत्र क्षेम्य होगा, उसका पुत्र सुव्रत होगा, उसका पुत्र धर्म्म होगा, उसका पुत्र सुश्रम होगा, उसका पुत्र दृढ़सेन होगा, उसका पुत्र सुमति होगा, उसका पुत्र सुबल होगा, उसका पुत्र सुनीत होगा, उसका पुत्र सत्यजित होगा, उसका पुत्र विश्वजित होगा, उसका पुत्र रिपुञ्जय होगा। ये बारहद्रथ राजा हैं जोकि एक हजार वर्ष तक राज्य करेंगे।"

यद्यपि वायु पुराण, भागवत पुराण, और मत्स्य पुराण, ने भी विष्णु पुराण की नाईं बारहद्रथों के लिये एक हजार वर्ष का समय दिया है फिर भी हम इन पुराणों के संशोधन करने का साहस करेंगे और इन बाईसों राजाओं के लिये कठिनता से ५०० वर्ष का समय देंगे। वास्तव में विष्णु पुराण ने अपनी भूल का संशोधन स्वयं किया है जैसा कि हम आगे चलकर दिखलावेंगे।

"बृहद्रथ वंश के अन्तिम राजा रिपुञ्जय का एक सुनीक नामक मंत्री होगा जोकि अपने सम्राट को मार कर अपने पुत्र प्रद्योतन को राजगद्दी पर बैठावेगा। उसका पुत्र पालक, उसका पुत्र विशाखयूप, उसका पुत्र जनक, और उसका पुत्र नन्दिवर्धन होगा। प्रद्योत के वंश के ये पांचों राजा पृथ्वी पर १३८ वर्ष तक राज्य करेंगे।"

"उसके उपरान्त शिशुनाग राजा होगा, उसका पुत्र काकवर्ण होगा। उसका पुत्र क्षेमधर्म्मन् होगा, उसका पुत्र क्षत्रौजस होगा, उसका पुत्र बिम्बिसार होगा, उसका पुत्र अजातशत्रु होगा, उसका पुत्र दर्भक होगा, उसका पुत्र

उदयाश्व होगा, उसका पुत्र भी नन्दि वर्धन होगा, और उसका पुत्र महानन्दिन् होगा। ये दसों शिशुनाग राजा पृथ्वी पर ३६२ वर्ष तक राज्य करेंगे।"

यहाँ हम रुक जांयगे क्योंकि इस सूची में हमको एक वा दो नाम ऐसे मिले हैं जिनसे कि हम परिचित हैं। वायु पुराण में विम्बिसार को बिंबिसार लिखा है और यह राजगृह का वही राजा है जिसके समय में गौतम बुद्धने कपिलवस्तु में जन्म लिया था और उसका पुत्र अजातशत्रु वही प्रतापी राजा है जिसके राज्य के आठवें वर्ष में गौतम की मृत्यु हुई। हमने बुद्ध की मृत्यु का समय ४७७ ई० पू० माना है और यदि अजातशत्रु के शेष समय तथा उसके चारों उत्तराधिकारियों के शासन के लिये एक सौ वर्ष का समय दें तो महानन्द की मृत्यु और शिशुनाग वंश के समाप्त होने का समय लग भग ३७० ई० पू० होता है।

अब यदि हम विष्णुपुराण में दिए हुए राज्य वंश के समय को मान लें तो बृहद्रथ वंश के लिये १००० वर्ष, प्रद्योत वंश के लिये १३८ वर्ष और शिशुनाग वंश के लिए ३६२ वर्ष हैं अर्थात् कुरु पाञ्चाल युद्ध से लेकर शिशुनाग वंश के अन्त तक ठीक १५०० वर्ष होते हैं। अथवा यों समझिए कि यदि शिशुनाग वंश की समाप्ति ३७० ई० पू० में समझी जाय तो कुरुपाञ्चाल युद्धका समय लगभग १८७० ई० पू० होता है।

परन्तु विष्णु पुराण का यह समय निरूपण ठीक नहीं है और विष्णु पुराण के ज्योतिष ने इस भूल को संशोधित किया है। क्योंकि जिस अध्याय से हमने ऊपर के वाक्यों को उद्धृत किया है उसी अध्याय के अन्त में (खंड ४, अध्याय

२४) यों लिखा है "परीक्षित के जन्म से नन्द के राज्याभिषेक तक १०१५ वर्ष हुए। जब सप्तर्षि के प्रथम दोनों तारे आकाश में ऊगते हैं और उनके ठीक बीचोबीच रात्रि के समय चन्द्रमा सम्बन्धी नक्षत्र पुञ्ज दिखलाई देता है तब सप्तर्षि इस नक्षत्रयुति में मनुष्यों के एक सौ वर्ष तक स्थिर रहता है। परीक्षित के जन्म के समय वे मघा नक्षत्र पर थे, जब सप्तर्षि पूर्वाषाढ़ में होंगे तब नन्द का राज्य आरम्भ होगा।" मघा से पूर्वाषाढ़ तक दस नक्षत्र होते हैं और इसी कारण यह जोड़ा गया कि परीक्षित और नन्द के बीच एक हजार वर्ष हुए। और यदि नन्द के राज्य के आरम्भ होने का समय (अर्थात् शिशुनाग वंश के समाप्त होने का समय) ३७० ई० पू० माना जाय तो परीक्षित ने चौदहवीं शताब्दी के आरम्भ में जन्म लिया और कुरु पाञ्चाल युद्ध लगभग १४०० ई० पू० में हुआ।

हमारे पाठक लोग देखेंगे कि हमने इस ग्रन्थ के पहिले भाग में इस युद्ध का जो समय निश्चित किया है उसमें और इस समय में केवल डेढ़ शताब्दि से भी कम अन्तर है।

इसके विरुद्ध यदि हम इन ज्योतिष सम्बन्धी बातों को छोड़ दें और बृहद्रथ, प्रद्योत और शिशुनाग वंशों के ३७ राजाओं में से प्रत्येक के राज्य काल का औसत २० वर्ष रक्खें तो कुरु पाञ्चाल युद्ध का समय नन्द के ४७० वर्ष पहिले अर्थात् १११० ई० पू० में होता है और इस तिथि में भी हमारी निश्चित की हुई तिथि से डेढ़ शताब्दी से कम का अन्तर होता है इसलिये हम ने इस युद्ध का जो समय निश्चित किया है वह प्रायः ठीक है।

उपरोक्त बातों से हम मगध के राजाओं के समय की एक सूची बनाने का उद्योग करेंगे। हम जानते हैं कि अजातशत्रु का

राज्य ४८५ ई० पू० में प्रारम्भ हुआ और उसके पिता बिंबिसार का राज्य ५३७ ई० पू० में प्रारम्भ हुआ, यदि हम बिंबिसार के चार पूर्वजों के लिये १०० वर्ष का समय मान लें तो शिशुनाग वंश ६३७ ई० पू० में प्रारम्भ हुआ।

शिशुनाग वंश के पहिले प्रद्योत वंश के पांच राजाओं ने राज्य किया और इन पांचों राजाओं का समय ठीक १३८ वर्ष कहा गया है। इससे प्रत्येक राजा का औसत समय २७ वर्ष से कुछ ऊपर होता है जो कि बहुत अधिक है। परन्तु यह मान कर कि एक वा दो राजा ने बहुत अधिक समय तक राज्य किया होगा, हम प्रद्योत वंश का समय १३८ वर्ष मान सकते हैं।

बृहद्रथ वंश के २२ राजाओं का राज्य समय १००० वर्ष कहा गया है। यह एक हजार वर्ष केवल एक गोल संख्या है और उस पर विश्वास नहीं करना चाहिये। इसके लिये ५०० वर्षका समय अधिक सम्भव है अथवा इसे ४८४ वर्ष रखिये जिस में २२ राजाओं की संख्या से उसमें पूरा भाग लग सके। परन्तु इससे भी प्रत्येक राज्य का औसत समय २२ वर्ष होता है जो कि अधिक है। परन्तु यह समझ कर कि कदाचित् कुछ अनावश्यक राजाओं का शासन काल छोड़ दिया गया हो हम इस औसत को मान सकते हैं।

इस हिसाब से हम निम्न लिखित सूची बनाते हैं। परन्तु बिंबिसार और अजातशत्रु के ऐतिहासिक राज्य वंश अर्थात् शिशुनाग वंश के जोकि ईसा की पहले सातवीं शताब्दी में प्रारम्भ होता है, पहिले के राजाओं का समय कहां तक ठीक है, यह हमारे प्रत्येक पाठक को स्वयं निश्चित करना चाहिये।

बृहद्रथ वंश

	ई० पू०		ई० पू०
जरासंध	१२८०	शुचि	१०३६
सहदेव (जो कि कुरु पाञ्चाल युद्ध के समय था)	१२५६	क्षेम्य	१०१७
		सुव्रत	६६५
सोमापि	१२३७	धर्म्म	६७३
श्रुतवत	१२१५	सुश्रम	६५१
अयुतयुस्	११६३	दृढ़सेन	६२६
निरमित्र	११७१	सुमति	६०७
सुक्षत्र	११४६	सुवल	८८५
बृहत् कर्म्मन्	११२७	सुनीत	८६२
सेनजित	११०५	सत्यजित्	८४१
शत्रुंजय	१०८३	विश्वजित्	८१६
विप्र	१०६१	रिपुंजय	७६७ से ७७५ तक

प्रद्योत वंश

प्रद्योतन	७७५	जनक	६६१
पालक	७४७	नन्दिवर्धन	६६४ से ६३७ तक
विशाखयूप	७१६		

शिशुनाग वंश

	ई० पू०		ई० पू०
शिशुनाग	६३७	अजातशत्रु	४८५
काकवर्ण	६१२	दर्भक	४५३
क्षेमधर्म्मन्	५८७	उदयाश्व	४३२
क्षत्रौजस्	५६२	नन्दिवर्धन	४११
बिंबिसार	५३७	महानन्दिन्	३६० से ३७० तक

अब हम पुनः वाक्यों को उद्धृत करेंगे ।

" महानन्दिन् का पुत्र शूद्र जाति की स्त्री से होगा, उसका नाम नन्द महापद्म होगा क्योंकि वह अत्यंत लोभी होगा । दूसरे परशुरामकी नाई वह क्षत्रिय जाति का नाश करने वाला होगा, क्योंकि उसके पीछे पृथ्वी के राजा लोग (शूद्र) होंगे । वह समस्त पृथ्वी को एक छत्र के नीचे लावेगा ; उसके सुमूल्य इत्यादि आठ लड़के होंगे जो कि महापद्म के पीछे राज्य करेंगे और वह तथा उसके पुत्र एक सौ वर्ष तक राज्य करेंगे । ब्राह्मण कौटिल्य नौ नन्दों का नाश करेगा ।"

उपरोक्त वाक्यों में हम नीच जाति के राजाओं को क्षत्रियों की राजगद्दी पर बैठते हुए और मगध के इन राजाओं का बल और महत्व उत्तरी भारतवर्ष में बढ़ते हुए देखते हैं। हमें कौटिल्य अर्थात् प्रसिद्ध चाणक्य का भी उल्लेख मिलता है जिसने नन्द वंश से बदला लेने की प्रतिज्ञा की थी (मुद्राराक्षस नाटक देखो) और चन्द्रगुप्त को मगध की राजगद्दी पर बैठाने में सहायता दी थी । नन्द और उसके आठों पुत्रों के लिये जो १०० वर्ष का समय दिया है वह केवल एक गोल संख्या है और उसे ठीक नहीं समझना चाहिए। यदि हम नन्द और उसके आठों पुत्रों के लिये ५० वर्ष का समय नियत करें तो यह बहुत है और इससे चन्द्रगुप्त के मगध के राज पाने का समय ३२० ई० पू० होता है ।

" नन्द वंश के समाप्त होने पर मौर्य्य वंश का राज्य होगा क्योंकि कौटिल्य चन्द्रगुप्त को राजगद्दी पर बैठावेगा, उसका पुत्र बिन्दुसार होगा, उसका पुत्र अशोकवर्धन होगा, उसका पुत्र सुयशस होगा, उसका पुत्र दशरथ होगा, उसका पुत्र संगत होगा, उसका पुत्र सालिसुक होगा, उसका पुत्र

सोमशर्म्मन होगा, और उसका उत्तराधिकारी बृहद्रथ होगा। ये मौर्य वंश के दस राजा हैं जो कि १३७ वर्ष तक इस पृथ्वी पर राज्य करेंगे।"

विष्णु पुराण का ग्रन्थकर्ता यहां पर अशोक वर्धन का उल्लेख करता है परन्तु उसके राज्य में धर्म के उस बृहद् परिवर्तन का कुछ भी वृत्तान्त नहीं लिखता, जो कि इस संसार भर में एक अद्वितीय बात है। इस ब्राह्मण ग्रन्थकार के लिये गुणी चाणक्य के कार्य्य जिसने चन्द्रगुप्त को राज्य पाने में सहायता दी थी उल्लेख करने योग्य हैं, परन्तु उस प्रतापी अशोक के कार्य्य वर्णन करने योग्य नहीं हैं जिसने कि भारतवर्ष का नाम, यश और धर्म्म एण्टीओक और मेसेडन से लेकर कन्या कुमारी और लङ्का तक फैला दिया था? अस्तु, जाने दीजिए। मौर्य्य वंश के लिये जो १३७ वर्षों का समय दिया है वह यदि मान लिया जाय तो मौर्य्य वंश की समाप्ति १८३ ई० पू० में हुई।

"इसके उपरान्त सुङ्ग वंश राज्य करेगा क्योंकि (अन्तिम मौर्य्य राजा का) सेनापति पुष्पमित्र अपने स्वामी को मार कर राज्य ले लेगा। उसका पुत्र अग्निमित्र होगा, उसका पुत्र सुज्येष्ठ होगा, उसका पुत्र आर्द्रक होगा, उसका पुत्र पुलिन्दक होगा, उसका पुत्र घोषवसु होगा, उसका पुत्र वज्रमित्र होगा, उसका पुत्र भागवत होगा, उसका पुत्र देवभूति होगा। ये सुङ्ग वंश के दस राजा हैं जो कि ११२ वर्ष तक राज्य करेंगे।"

प्रसिद्ध कालिदास ने इस वंशके दूसरे राजा का नाम अपने प्रसिद्ध नाटक मालविकाग्निमित्र में अमर कर दिया है। परन्तु वहां अग्निमित्र विदिशा का राजा कहा गया है,

मगधका नहीं । और उसके पिता पुष्पमित्र का सिंध नदी पर यवनों (बेक्ट्रिया के यूनानी लोगों) से युद्ध करने का वर्णन किया गया है । इस बात में सम्भवतः कुछ सत्यता भी है, क्योंकि सिकन्दर के समय के पीछे भारतवर्ष के पश्चिमी सीमा प्रदेश में बेक्ट्रियन और हिन्दू लोगों से निरन्तर युद्ध होता रहा और मगध को, जो कि भारतवर्ष का मुख्य राज्य था, इन युद्धों में सम्मिलित होना पड़ता था । सङ्ग वंश के लिये जो ११२ वर्ष का समय दिया है उसे मान लेने से इस वंश की समाप्ति ७१ ई० पू० में निश्चित होती है ।

"सङ्ग वंश के अन्तिम राजा देवभूति के कुकर्मों में लिप्त होने के कारण उसका वासुदेव नामक कान्व मंत्री उसे मार कर राज्य छीन लेगा । उसका पुत्र भूमिमित्र होगा, उसका पुत्र नारायण होगा, उसका सुशर्म्मन् होगा । ये चारों कान्वायन ४५ वर्ष तक इस पृथ्वी पर राज्य करेंगे ।"

अब हम इन वंशों के राजाओं की तिथि विष्णु पुराण के अनुसार निश्चित करेंगे ।

नन्द वंश

नन्द और उसके आठों पुत्र—३७० से ३२० तक ।

मौर्य वंश ।

	ई० पू०		ई० पू०
चन्द्रगुप्त	३२०	सङ्गत	२०८
बिन्दुसार	२९१	सालिसुक	२०१
अशोक	२६०	सोमश्रमन	१९४
सुयशस्	२२२	बृहद्रथ	१८७ से १८३ तक
दशरथ	२१६		

सङ्ग वंश ।

पुष्प मित्र	१८३	पुलिन्दक	१२६
अग्नि मित्र	१७०	घोषवसु	११५
सुज्येष्ठ	१५६	वज्र मित्र	१०४
वसुमित्र	१४८	भागवत	६३
आर्द्रक	१३७	देवभूति	८२ से ७१ तक

कन्व वंश

वासुदेव कान्व	७१	नारायण	४८
भूमि मित्र	५६	सुशर्मन्	३७ से २६ तक

इनमें से अनेक राजाओं का राज्य काल बहुत ही थोड़ा होने, राज्य वंश बहुधा बदलने और सेनापति और मंत्रियों का राजाओं को मार कर स्वयं राजा हो जाने से विदित होता है कि मगध का प्रताप अब नहीं रहा था और अब निर्बलता और क्षीणता आरम्भ हो गई थी। जिस राज्य ने चन्द्रगुप्त और अशोक के समय में सारे भारतवर्ष के लिये नियम निश्चित किए थे वह अब निर्बलता की अन्तिम अवस्था में था और वह किसी ऐसे प्रबल आक्रमण करने वाले को स्वीकार करने के लिये तयार था जोकि उसका राज्य चाहता हो। ऐसे आक्रमण करने वाले दक्षिण से आए, दक्षिण में दार्शनिक काल में ही अन्ध्र का राज्य प्रबल और विख्यात हो गया था और अन्ध्र के एक सर्दार ने (जोकि एक "प्रबल भृत्य" कहा गया है) अब मगध को विजय किया और वहां ४५० वर्ष तक राज्य किया। विष्णु पुराण से अब हम एक सूची और उद्धृत करते हैं जिसमें कि इन अन्ध्र राजाओं के नाम दिए हैं।

"कान्व सुशर्म्मन् को अन्ध्र जाति का एक सिप्रक नामी प्रबल भृत्य मार डालेगा और स्वयं राजा बन बैठेगा (और यह अन्ध्र भृत्य नये का स्थापित करने वाला होगा)। उसका उत्तराधिकारी उसका भाई कृष्ण होगा, उसका पुत्र श्रीसातकर्णि होगा, उसका पुत्र पूर्णोत्सङ्ग होगा, उसका पुत्र सातकर्णि होगा, उसका पुत्र लम्बोदर होगा, उसका पुत्र इवीलक होगा, उसका पुत्र मेघस्वति होगा, उसका पुत्र पटुमन होगा, उसका पुत्र अरिष्टकर्म्मन् होगा, उसका पुत्र हाल होगा, उसका पुत्र उट्ठलक होगा, उसका पुत्र प्रविलसेन होगा, उसका पुत्र सुन्दरसातकर्णि होगा, उसका पुत्र चकोरसातकर्णि होगा, उसका पुत्र शिव स्वति होगा, उसका पुत्र गौतमीपुत्र होगा, उसका पुत्र पुलिमत होगा, उसका पुत्र शिव सातकर्णि होगा, उसका पुत्र शिवस्कन्ध होगा, उसका पुत्र यज्ञश्री होगा, उसका पुत्र विजय होगा, उसका पुत्र चन्द्रश्री होगा, उसका पुत्र पुलोमार्चिस होगा। ये अन्ध्र भृत्य वंश के तीस राजा ४५६ वर्ष तक राज्य करेंगे"।

परन्तु उपरोक्त सूची में केवल १४ राजाओं के नाम हैं पर विष्णु पुराण में और वायु पुराण तथा भागवत पुराणों में भी इस वंश के तीस राजा कहे गये हैं। और यदि इस वंश का राज्य २६ ई० पू० में आरम्भ हुआ तो उपरोक्त समय के अनुसार उसकी समाप्ति सन् ४३० ई० में हुई।

यदि हम इन ४५६ वर्षों को उपरोक्त २७ राजाओं में बाँट दें तो प्रत्येक राज्य के लिये १६ वर्षों का औसत समय होता है जैसा कि हम नीचे दिखलाते हैं।

अन्ध्र वंश

	ई० पू०		ईस्वी
सिमुक	२६	पुत्तलक	१८३
कृष्ण	७	प्रविलसेन	२०२
	ईस्वी	सातकर्णि ३	२२१
सातकर्णि १	१२	सातकर्णि ४	२४०
पूर्णोत्संग	३१	शिवस्वाति	२५९
सातकर्णि २	५०	गौतमीपुत्र	२७८
लम्बोदर	६९	पुलिमत	२९७
इवीलक	८८	सातकर्णि ५	३१६
मेघस्वाति	१०७	शिवस्कन्ध	३३५
पटुमान	१२६	यज्ञश्रीगौतमीपुत्र २	३५४
अरिष्टकर्म्मन्	१४५	विजय	३७३
हाल	१६४	चन्द्रश्री	३९२
		पुलोमार्चिस ४११ से ४३० तक	

परन्तु विद्वानों ने गौतमीपुत्र प्रथम से लेकर गौतमीपुत्र द्वितीय तक ५ राजाओं की जो तिथियां शिलालेखों से निश्चित की हैं वे उपरोक्त तिथियों से नहीं मिलतीं। यह कुछ निश्चय के साथ जाना गया है कि इन पांचों राजाओं ने लगभग १०० वर्ष तक राज्य किया अर्थात् ११३ ईस्वी से २११ ईस्वी तक।

यहां पर यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि अन्ध्र राजाओं का बल समय समय पर बदलता रहा और हम आगे के अध्याय में दिखलावेंगे कि सौराष्ट्र का देश ईसा की पहिली शताब्दी में इन के हाथ से चला गया था परन्तु उसे गौतमीपुत्र ने पुनः जीता। पांचवीं शताब्दी में इस वंश का पतन हुआ और तब मगध के राज का अन्त हो गया क्योंकि अन्ध्र

राजाओं के पीछे अनेक विदेशी जातियों ने इस देश पर आक्रमण किया और उसे नष्ट और छिन्न भिन्न कर दिया। विष्णु पुराण में लिखा है कि अन्ध्रों के उपरान्त "भिन्न भिन्न जातियां राज्य करेंगी अर्थात् सात आभीर जाति के राजा, १० गर्दभिल राजा, १६ शक राजा, ८ यवन राजा, १४ तुषार राजा, १३ मुण्ड राजा और ११ मौन राजा इस पृथ्वी का राज्य करेंगे।"

अध्याय ४

काश्मीर और गुजरात।

पिछले अध्याय में हमने भारतवर्ष के केवल मध्यदेश के राज्य का वर्णन किया है। हम देख चुके हैं कि ईसा के पहिले सातवीं शताब्दी में शिशुनाग के समय से लेकर भारतवर्ष में प्रधान अधिकार मगध के राजा का था। हम यह भी देख चुके हैं कि कई राज्यवंशों के नाश होने के उपरान्त यह प्रधान अधिकार अन्ध्र वंश के हाथ लगा जिन्होंने कि ईसा के पहिले पहिली शताब्दी से लेकर ईसा के उपरान्त पांचवीं शताब्दी तक उसे रक्षित रक्खा।

जब अन्ध्र लोगों का भारतवर्ष के मध्य में सबसे प्रधान अधिकार था उस समय पश्चिम के प्रान्तों में विदेशी लोगों के बहुत आक्रमण हुए और हम उनमें से कुछ का यहां वर्णन करेंगे।

सिकन्दर के लौट जाने के उपरान्त चन्द्रगुप्त ने सिन्धु नदी के प्रान्तों में यूनानी हाकिम सिल्यूकस को हरा कर यूनानियों को भारतवर्ष से निकाल दिया। परन्तु बेक्ट्रिया में यूनानियों

का एक स्वतन्त्र राज्य था और हिन्दुओं तथा बेक्ट्रिया के यूनानियों में कभी मित्रता और कभी शत्रुता का व्यवहार होता रहा। बेक्ट्रिया के यूनानी लोग सिक्के बनाने में बड़े तेज थे और उनके सिक्कों से एक सौ तीन ई० पू० तक उनके सब राजाओं की एक पूरी सूची बनाई गई है। बहुधा इन राजाओं का अधिकार सिन्ध के आगे तक बढ़ जाता था और यह निश्चय है कि बौद्ध हिन्दुओं की सभ्यता और शिल्प पर उनकी सभ्यता का प्रभाव पड़ा। बौद्धों के खँड़हरों में यूनानी संगतरासी के काम और हिन्दुओं के सिक्कों पर यूनानी लेख खुदे हुए मिलते हैं।

लगभग १२६ ई० पू० में यूची तथा अन्य जातियों ने मध्यएशिया से होकर काबुल को जीता और सिन्ध नदी तक अपना अधिकार जमाया और इन लोगों ने बेक्ट्रिया के राज्य का अन्त कर दिया। इसी जाति का एक राजा हविश्क काबुल में राज्य करता था। ऐसा जान पड़ता है कि वह वहां से निकाला गया और तब उसने काश्मीर को विजय किया जहां कि उसके उत्तराधिकारी हुश्क और कनिश्क ने ईसा के उपरान्त पहिली शताब्दी में राज्य किया है।

कनिष्क बड़ा विजय करने वाला था और उसने अपना राज्य काबुल और यारकन्द से लेकर आगरे और गुजरात तक फैलाया। अशोक के समय से लेकर अब तक भारतवर्ष में ऐसा कोई राजा नहीं हुआ था। ह्वेनत्सांग लिखता है कि चीन के अधीनस्थ राजा लोग उसके पास मनुष्य बन्धक स्वरूप भेजते थे और जिस नगर में ये मनुष्य रहते थे वह चीनपटि कहलाता था। कनिष्क भी एक कट्टर बौद्ध था, उसने उत्तरी बौद्धों की एक बड़ी सभा की और आस पास के राज्य में बौद्ध धर्म का प्रचार करने के लिये गुरुकुल भेजे।

हम पहिले लिख चुके हैं कि शकाब्द संवत् कनिष्क के राज्यकाल से चला है। डाक्टर ओडेनबर्ग कहते हैं कि यह संवत् कनिष्क के राज्याभिषेक के समय से गिना जाता है और यह बात ठीक जान पड़ती है।

कनिष्क की मृत्यु के उपरान्त इसके बड़े राज्य के टुकड़े टुकड़े हो गए और काश्मीर पहिले जैसा हलका राज्य था वैसाही फिर हो गया। इस राज्य का इतिहास राजतरंगिणी नामक पुस्तक में दिया है जिसे कि कल्हण पण्डित ने बनाया था जो ईसा की बारहवीं शताब्दी में हुआ है। हम यहां पर इस इतिहास की कुछ आलोचना करेंगे।

इसमें कनिष्क के पहिले के समय की कोई मुख्य घटना नहीं लिखी है। उसमें लिखा है कि कुरुपाञ्चाल युद्ध के समय से लेकर कनिष्क के उत्तराधिकारी अभिमन्यु के समय तक १२६६ वर्षों में ५२ राजाओं ने राज्य किया। इससे कुरुपाञ्चाल युद्ध का समय ईसा के पहिले १२ वीं शताब्दी में निश्चित होता है। उसमें यह भी लिखा है कि कनिष्क के पहिले तीसरा राजा अशोक एक बौद्ध था और वह "एक सत्य और निष्कलङ्क राजा था और उसने वितस्ता के तटोंपर बहुत से स्तूप बनवाए" उसका उत्तराधिकारी जलोक एक कट्टर हिन्दू था और उसने उन म्लेछों को भगाया जोकि पश्चिम से बड़ी संख्या में आ रहे थे। ये म्लेच्छ वेही तूरानी लोग रहे होंगे जिन्होंने कि इसके उपरान्त शीघ्र ही काश्मीर को विजय किया। जलोक का उत्तराधिकारी द्वितीय दामोदर हुआ और उसके उपरान्त विदेशी लोग आए और "उनके दीर्घराज्य में बौद्ध सन्यासी लोग देश में सबसे प्रबल रहे और बौद्ध धर्म का प्रचार बिना किसी बाधा के हुआ।"

हम यहां कनिष्क से लेकर उज्जयिनी के विक्रमादित्य के समकालीन मातृगुप्त के समय तक ३१ राजाओं की नामावली देंगे। यदि हम कनिष्क के राज्याभिषेक का समय ७८ ई० मानें और मातृगुप्त का समय ५५० ईस्वी तो इन ३१ राजाओं का समय ४७२ वर्ष होता है जिससे प्रत्येक राज्य का औसत समय १५ वर्ष होता है और यह असम्भव नहीं है।

	ईस्वी		ईस्वी
कनिष्क	७८	क्षितिनन्द	२९५
अभिमन्यु	१००	वसुनन्द	३१०
गोनन्द	११५	नर २.	३२५
विभीषण प्रथम	१३०	अक्ष	३४०
इन्द्रजीत	१४५	गोपादित्य	३५५
रावण	१६०	गोकर्ण	३७०
विभीषण द्वितीय	१७५	नरेन्द्रादित्य	३८५
नर १	१९०	युधिष्ठिर	४००
सिद्ध	२०५	प्रतापादित्य	४१५
उत्पलाक्ष	२२०	जलौक	४३०
हिरण्याक्ष	२३५	तुंजिन	४४५
मुकुल	२५०	विजय	४६०
मिहिरकुल	२६५	जयेन्द्र	४७५
वक	२८०	सन्धिमति	४९०
मेघवाहन	५०५	और हिरण्य का उत्तराधिकारी	
श्रेष्ठसेन	५२०	मातृगुप्त हुआ	
हिरण्य	५३० से ५५० तक		

इनमें से कुछ राजाओं का संक्षिप्त वर्णन करने योग्य है। कहा जाता है कि नर प्रथम बौद्धों का बड़ा द्वेषी था और

उसने बहुत से बौद्धमठ जला डाले और उन मठों के लिये जो गांव थे उन्हें ब्राह्मणों को दे डाला। मुकुल के राज्य में म्लेच्छों ने एक बार पुनः काश्मीर पर अपना अधिकार कर लिया पर उसका उत्तराधिकारी मिहिरकुल बड़ा विजयी था और कहा जाता है कि उसने अपना राज्य करनाट और लंका तक बढ़ाया। वह भी बौद्धों का बड़ा विरोधी था। प्रतापादित्य के राज्य से एक नया वंश आरम्भ होता है। उसके पोते तुञ्जिन के समय में साली अन्न पर अचानचक कड़ा पाला मार आने के कारण काश्मीर में बड़ा अकाल पड़ा। मेघवाहन बौद्ध धर्मावलम्बी जान पड़ता है। कहा जाता है कि उसने लंका तक विजय किया और उसने अपने राज्य में तथा जिन जिन देशों को उसने जीता उन सब देशों में पशुओं के बध का निषेध किया। उसकी रानियों ने बहुत से बौद्ध मठ बनवाए। उसके उपरान्त उसका पुत्र श्रेष्ठसेन और उसके उपरान्त उसका पौत्र हिरण्य गद्दी पर बैठा और तब उज्जयिनी के बिक्रमादित्य ने जो कि उस समय भारतवर्ष में सर्व प्रबल था मातृगुप्त को काश्मीर की गद्दी पर बैठाया।

काश्मीर के इस संक्षिप्त वृत्तान्त से अब हम गुजरात की ओर झुकेंगे। हम पहिले कह चुके हैं कि कनिष्क ने अपना राज्य दक्षिण में गुजरात तक फैलाया और गुजरात में उसके अधीनस्थ क्षहरत जाति के राजा राज्य करते रहे। परन्तु नहपान के उपरान्त ये राजा स्वतंत्र हो गये और मगध के अन्ध्र लोगों से जिनके आधीन सौराष्ट्र देश था, अपनी स्वतंत्रता स्थिर रक्खी। ये लोग "शाह राजा" वा क्षत्रप राजा कहलाते हैं और उनका वृत्तान्त केवल उनके सिक्कों और शिलालेखों से विदित होता है और बहुत विचार के उपरान्त यह निश्चित हुआ है कि ये लोग शक का व्यवहार करते थे और

उनके सब सिक्कों और शिलालेखों पर शक संवत् दिया है। परिश्रमी और योग्य विद्वान भगवान लाल इन्द्रजीत ने इन शाह राजाओं को जिस क्रम में रक्खा है उसके अनुसार नीचे एक सूची दी जाती है। उसमें हम प्रत्येक राजा के लिये केवल एक एक सिक्के की तिथि देंगे।

सौराष्ट्र के शाह राजा।

	सिक्के की तिथि	सन ईस्वी		सिक्के की तिथि	सन ईस्वी
नहपान	४१	११९	विजयसेन	१६०	२३८
चष्टन	—	—	ईश्वरदत्त	—	—
जैदायन	—	—	दमजदश्री	१७६	२५४
रुद्र दामन	७२	१५०	रुद्र सेन	१८०	२५८
दामज़द	—	—	भर्तृदामन	२००	२७८
जीवदावन	१००	१७८	विश्वसिंह	१९८	२७६
रुद्रसिंह	१०३	१८१	सिंहसेन	—	—
रुद्र सेन	१२५	२०३	विश्वसेन	२१६	२९४
संघदमन	१४४	२२२	रुद्रसिंह	२३१	३०९
पृथ्वीसेन	१४४	२२२	यशोदावन	२४०	३१८
दामसेन	१४८	२२६	सिंहसेन	—	—
दमजदश्री	१५४	२३२	रुद्रसेन	२७०	३४८
वीरदामन	१५८	२३६	रुद्रसिंह	३१०	३८८
यशोदामन	१६०	२३८			

इस राज्य वंश के जो बहुत से शिलालेख पश्चिमी भारतवर्ष के भिन्नभिन्न स्थानों में पाए गए हैं उनमें से हम यहां पर केवल

एक को लिखेंगे जो कि कदाचित् सब से पुराना है और जिससे हमारे पाठकों को इस शिलालेखों का ठीक ठीक ज्ञान हो जायगा। निम्न लिखित शिलालेख जो कि नासिक की गुफाओं में पाया गया है नहपान का है जो कि उपरोक्त सूची में पहिला राजा है।

"सर्व सम्पन्न को! यह गुफा और ये छोटे तालाब गोवर्धन में त्रिरश्मि पर्वतों पर दिनक के पुत्र राजा क्षहरत सत्रप नहपान के दामाद प्रिय उसवदात ने बनवाए थे जिसने कि तीन लाख गऊ और सोना दान दिया और बारनासाय नदी पर सीढ़ियां बनवाईं, ब्राह्मणों और देवताओं को सोलह ग्राम दिए, प्रतिवर्ष एक लाख ब्राह्मणों को भोजन कराया, पवित्र स्थान प्रभसु पर ब्राह्मणों के लिये आठ स्त्रियाँ रख दीं, भरुकच्छ दशपुर गोवर्धन और सोरपराग में चतुष्कोण, गृह और टिकने के स्थान बनवाए, वाटिका, तालाब और कुएँ बनवाए, इबा, परादा, दमन, तापी, करबिना और दहनुका नदियों को पार करने के लिये उनमें डोंगियां छोड़वाईं, धर्मशाला बनवाईं, और पौसरा चलाने के लिये स्थान दिए और पिरिडत कावड़, गोवर्धन, सुवर्णमुख, सोरपराग, रामतीर्थ, और नाम गोल ग्राम के चरणों और परिशदों के बत्तीस नाधिगेरों के लिये एक हजार की जमा दी। ईश्वर की आज्ञा से मैं वर्षा काल में हिरध उत्तमभद्र को छुड़ाने के लिये मालय को गया। मालय लोग (हम लोगों के युद्ध के बाजों का) नाम सुनकर भाग गए और वे सब उत्तम क्षत्रियों के अधीन बनाए गए। वहां से मैं गोवर्धनी को गया और वहां पर पूजा कर के तीन हजार गाय और एक गांव दान दिया।"

नहपान का उपरोक्त शिलालेख जो कि नासिक की गुफाओं में पाया गया है बड़े काम का है क्योंकि उससे विदित होता है कि काश्मीर के बौद्ध राजाओं का अधीनस्थ एक साधारण

राजा भी ब्राह्मणों का सत्कार करने और उन्हें दान देने में कैसा प्रसन्न होता था और सन् ईस्वी के उपरान्त की शताब्दियों में हिन्दू धर्म्म और बौद्ध धर्म्म दोनों ही साथ साथ किस भाँति प्रचलित थे। इनके साथ साथ प्रचलित होने में बाधा केवल तब ही पड़ती थी जब कि कभी कभी कोई बड़ा कट्टर राजा गद्दी पर बैठता था। ब्राह्मणों को स्वर्ण, गौ और गाँव दान देना, स्नान करने के लिये घाट, टिकने के लिये मकान, धर्म्मशाला, वाटिका, तालाब और कूएँ बनवाना बिना कुछ लिये लोगों को नदी के पार उतरने का प्रबन्ध करना और चरणों और परिषदों को दान देना, ये राजाओं के लिये उचित उदारता के कार्य्य समझे जाते थे। और अन्त में इस शिलालेख से हमको यह भी विदित होता है कि सौराष्ट्र लोगों ने उत्तमभद्र क्षत्रिय लोगों की सहायता करने के लिये मालय लोगों पर आक्रमण किया।

शाह लोगों का सबसे अद्भुत शिलालेख गिर्नार के निकट एक पुल पर खुदा है जो कि रुद्रदामन का पुल कहलाता है। इसे पहिले पहिल जेम्स प्रिन्सेप साहब ने पढ़ा था और उनके उपरान्त इसके अधिक शुद्ध पाठ प्रकाशित हुए हैं। ऊपर दी हुई राजाओं की सूची से पाठक लोग देखेंगे कि रुद्रदामन नहपान के उपरान्त तीसरा राजा था और उसने ईसा की दूसरी शताब्दी के बीच में राज्य किया। इस शिलालेख में अनूठी बात यह है कि इसमें अशोक और उसके दादा चन्द्रगुप्त का उल्लेख है। इसमें लिखा है कि यह पुराना पुल नदी की बाढ़ से बह गया था, मौर्य वंशी राजा चन्द्रगुप्त के प्रधान शिलपकार पुष्पगुप्त ने उसकी मरम्मत की और उसके उपरान्त अशोक के यवन राजा तुशास्प ने। इसके उपरान्त उसे महाक्षत्रप रुद्रदामन ने संवत ७२ में (अर्थात् सन १५० ईस्वी में)

बनवाया था। इस शिलालेख में रुद्रदामन ने यह भी शेखी हांकी है कि दक्षिण पथ के राजा सातकर्णि को उसने कई बार हरा कर उससे सन्धि कर ली। और उसने सौराष्ट्र, कच्छ, तथा अन्य देशों को विजय करने का भी उल्लेख किया है। रुद्रदामन के उपरोक्त शिलालेख से विदित होगा कि सौराष्ट्र के शाह राजा बहुधा प्रसिद्ध अन्ध्र राजाओं की बराबरी करने वाले होते थे।

इसके विरुद्ध नासिक की एक गुफा के शिलालेख में अन्ध्र वंश का राजा गौतमीपुत्र लिखता है कि उसने सौराष्ट्र कच्छ तथा अन्य देशों को विजय किया और खहरत के वंश का नाश कर दिया। यह द्वितीय गौतमीपुत्र था जिसने कि ईसा की दूसरी शताब्दी के अन्त में राज्य किया है।

हम इन तीनों जातियों के आक्रमण और विजय का वर्णन कर चुके हैं अर्थात् ईसा के पहिले दूसरी शताब्दी में बेक्ट्रिया के युनानियों का, ईसा के उपरान्त पहिली शताब्दी में यूची तथा अन्य तूरानी जातियों का, और अन्त में उनके अधीनस्थ उन शाह राजाओं का, जिन्हों ने तीन शताब्दियों तक सौराष्ट्र में राज्य किया। इसके उपरान्त और जातियों के भी आक्रमण हुए परन्तु उनका इतिहास में कुछ भी पता नहीं लगता।

अन्त में ईसा की चौथी और पांचवी शताब्दियों में प्रसिद्ध हन लोग आए। टिड्डियों के समान उनका बड़ा दल फ़ारस में फैल गया और वहां के राजा बहराम गौर को उसने भारतवर्ष में आश्रय लेने के लिये विवश किया। उसने कन्नौज के राजा से सम्बन्ध कर लिया और उसकी कन्या से विवाह किया। सम्भवतः यह राज कुमारी जिसने फ़ारस के पति को स्वीकार किया, गुप्त वंश की कन्या थी क्योंकि इस समय कन्नौज में गुप्त वंश के राजा राज्य करते थे और वे भारतवर्ष में सब से प्रबल थे। हम उनके विषय में अगले अध्याय में लिखेंगे।

अध्याय ५

गुप्त वंशी राजा।

५० वर्ष हुए कि जेम्स प्रिन्सेप साहब ने भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास के अध्ययन के लिये भारतवर्ष में जो शिला-लेख मिले हैं उन सबको क्रमानुसार प्रकाशित करने की आव-श्यकता दिखाई और उन्होंने यह भी सम्मति दी कि इस संग्रह का नाम कार्पस इन्सक्रुप्शनम् इण्डिकेरम् रक्खा जाय।

इस प्रस्ताव के अनुसार जेनरल सर एलेक्ज़ाण्डर कनिंग-हाम साहब ने सन् १८७७ ईस्वी में इस ग्रन्थ का पहिला भाग प्रकाशित किया। उसमें अशोक के वे शिलालेख हैं जिनके विषय में हम इस पुस्तक के पहिले अध्याय में लिख चुके हैं।

बम्बई के सिविल सर्विस के फ़्लीट साहब ने इस पुस्तक का तीसरा भाग सन् १८८८ में प्रकाशित किया। उसमें गुप्त राजाओं के शिलालेख हैं और उनकी तिथियों के विषय में भारतवर्ष तथा यूरप में गत ४० वर्षों से जो वादविवाद हो रहा है उसका भी एक इतिहास दिया है।

इस ग्रन्थ का दूसरा भाग जिसमें कि सौराष्ट्र के शाह राजाओं का शिलालेख होगा अभी तक नहीं आरम्भ किया गया। मैं आशा करता हूँ कि कोई योग्य विद्वान् और अनुभवी पुरातत्ववेत्ता इस कार्य्य के लिये अब भी नियत किया जायगा और भारतवर्ष के शिलालेखों के इस संग्रह को पूरा कर देगा जो कि भारतवर्ष के बौद्ध समय के इतिहास के लिये इतने उपयोगी हैं।

हम देख चुके हैं कि इन गुप्त राजाओं के समय के विषय में प्रायः ४० वर्षों तक वादविवाद होता रहा और बहुत से योग्य विद्वानों ने इस वादविवाद में अपना समय लगाया है। इस वादविवाद के इतिहास लिखने में फ़्लीट साहब ने अपने अमूल्य ग्रन्थ के ३० पन्ने लगाए हैं। पर हर्ष का विषय है कि यह वादविवाद अब समाप्त हो गया और अब जो निश्चय किया गया है उसमें कोई सन्देह नहीं रह गया है। ११ वीं शताब्दी में अलबेरुनी ने लिखा है कि गुप्त संवत् शक संवत् से २४१ वर्ष पीछे का है अर्थात् वह सन् ३०० ईस्वी से प्रारम्भ होता है। आधुनिक समय के सब एकत्रित प्रमाणों से यह बात ठीक जान पड़ती है और अब हम गुप्त लोगों के सिक्कों और शिलालेखों की तिथियों को पढ़ सकते हैं। केवल यह स्मरण रखना चाहिए कि उनसे सन् ईस्वी जानने के लिये हमें उनमें ३१९ वर्ष जोड़ने पड़ेंगे। फ़्लीट साहब, जो अपने परिश्रमों की ओर कुछ पक्षपात करने में क्षमा के योग्य हैं, कहते हैं कि मन्दसोर के शिलालेख से, जिसे कि उन्होंने प्राप्त किया है, यह वादविवाद निश्चित हो जाता है। विद्वान् लोग प्रायः इस बात में सहमत हैं कि मन्दसोर का शिलालेख इस सिद्धान्त को सम्भवतः निश्चित कर देता है।

हम नीचे गुप्त राजाओं की नामावली तथा उनके सिक्कों और शिलालेखों की तिथियाँ और उनके ईस्वी सन् देते हैं—

सिक्कों और शिलालेखों
की तिथियाँ

(महाराज) गुप्त घटोत्कच	लगभग ३०० ई०
चंद्रगुप्त १ (वा विक्रमादित्य)... ...	,, ३१० ई०
समुद्रगुप्त	,, ३५० ई०

चंद्रगुप्त२(वा विक्रमादित्य)	८२,८८,९३,९५	४०१,४०७,४१२,४१४ ई०
कुमारगुप्त (वा महेंद्रादित्य)	९६,९८,१२९,१३०	४१५,४१७,४४८,४४९ ई०
स्कन्दगुप्त	१३६,१३७,१३८,१४१,१४४,१४५,१४६,१४८,१४९	४५५,४५६,४५७,४६० ई० ४६३,४६४,४६५,४६७,४६८

डाक्टर बुहलर साहब का यह मत है कि गुप्त संवत् चन्द्रगुप्त प्रथम का स्थापित किया हुआ है। उसके उत्तराधिकारी समुद्र गुप्त ने चौथी शताब्दी के दूसरे अर्ध भाग में राज्य किया। इलाहाबाद में अशोक की लाट पर खुदा हुआ लेख इस बड़े राजा के अधिकार और राज्य को बहुत कुछ विदित करता है।

"जिसका प्रताप और बड़ा सौभाग्य इससे विदित होता है कि उसने कोशल के महेन्द्र को, व्याघ्र राज महाकान्तार को, केरल के मन्त राज को, पिष्टपुर के महेन्द्र को, कोट्टुर के स्वामिदत्त को, एरण्डपल्ल के दमन को, काञ्ची के विष्णुगोप को, अवमुक्त के नील राज को, वेंगी के हस्तिवर्म्मन को, पलक्क के उग्रसेन को, देवराष्ट्र के कुवेर को, कुस्थलपुर के धनंजय को और दक्षिण के और सब राजाओं को कैद करके फिर छोड़ दिया।

"जिसका प्रताप बहुत बड़ा था और उसकी वृद्धि रुद्रदेव, मेतल, नागदत्त, चन्द्रवर्म्मन, गणपतिनाग, नागसेन, अच्युत, नन्दिन, बलवर्म्मन, तथा आर्य्यावर्त के अन्य बहुत से राजाओं के जड़ से विनाश करने से हुई थी, जिसने जंगली देशों के सब राजाओं को अपना नौकर बना लिया था।

"जिस राजा को सीमा प्रदेश के राजा लोग अर्थात् समतत, देवाक, कामरूप, नेपाल, कर्तृपुर तथा अन्यदेशों के राजा, और मालव लोग, अर्जुनायन, यौधेय, माद्रक, अभीर, प्राजुन, सनकानिक, काक, करपरिक, तथा अन्य जातियां कर देकर और उसकी आज्ञाओं का पालन करके पूरी तरह से मानती थीं।

"जिसका सारे संसार में फैला हुआ शान्त सुयश बहुत से गिरे हुए राज्यवंशों को पुनः स्थापित करने से हुआ था जो अपने बाहु की बड़ी प्रबलता से सारे संसार को बांधे हुए था और जिसे देवपुत्र, शाहि, शाहनुसाहि, शक, मुरून्ड, सिंघल के लोग तथा अन्य सब द्वीपों के निवासी अपने को बलिदान की भांति देकर, कुमारी स्त्रियों को उसकी भेंट करके, गरुड़ चिन्ह देकर; अपने राज्य का भोग उसे देकर, और उसकी आज्ञाओं का पालन करके सत्कार के साथ उसकी सेवा करते थे।"

यह एक गुप्त राजा का भड़कीला और कदाचित् कुछ बढ़ाया हुआ वर्णन है। उस से हमें विदित होता है कि उसने काञ्ची के राज, तथा दक्षिणी भारतवर्ष के अन्य देशों को जीता उसने आर्य्यावर्त अर्थात उत्तरी भारतवर्ष के राजाओं का नाश किया, समतत (पूर्वीबंगाल) कामरूप (आसाम) नेपाल तथा अन्य सीमा प्रदेशों के राजा और मालव, माद्रक, और अभीर इत्यादि जातियां उसके आज्ञाओं का पालन करती थीं और उसे कर देती थीं, और पश्चिमी देश शाह और शाहंशाह और लंका के लोग भी उसके लिये भेंट तोहफ़े तथा अपने देश की सुन्दर कुमारी स्त्रियां भेजते थे। इस शिलालेख के अन्त में लिखा है कि यह बड़ा राजा प्रतापी महाराजा गुप्त का परपौत्र" "प्रतापी महाराज घटोत्कच का पौत्र" —"प्रतापी महाराजा-

धिराज चन्द्रगुप्त का पुत्र "—"महादेवी कुमार देवी से उत्पन्न हुआ था" जो कि लिच्छवि वंश की कन्या थीं। समुद्र गुप्त के उपरान्त उसका पुत्र चन्द्रगुप्त द्वितीय गद्दी पर बैठा और उसके शिलालेखों में सांची में एक छोटा शिलालेख है जिसमें बौद्ध सन्यासियों अर्थात् काकनाद बोट के पवित्र महाविहार के आर्य संघ का एक गांव दान देने का उल्लेख है। एक दूसरे स्थान पर अर्थात् मथुरा में एक शिलालेख पाया गया है जिसमें चन्द्रगुप्त ने अपनी माता का नाम दिया है और अपने को "महादेवी दत्तदेवी से उत्पन्न हुआ" महाराजाधिराज समुद्रगुप्त का पुत्र कहा है। चन्द्रगुप्त द्वितीय का उत्तराधिकारी उसका पुत्र कुमारपुत्र हुआ जिसका एक शिलालेख संयुक्त प्रदेश में बिलसड स्थान में पाया गया है जिसमें एक प्रथम गुप्त राजा से लेकर इस वंश की पूरी वंशावली दी है। और उसने अपने को "प्रतापी महाराजाधिराज चन्द्रगुप्त का महादेवी ध्रुव देवी से उत्पन्न" पुत्र कहा है।

जिला इलाहाबाद में मनकुवर स्थान में ठाकुर भगवन लाल इन्द्रजी ने सन् १८७० ईस्वी में कुमार गुप्त का एक दूसरा शिलालेख पाया। यह शिलालेख बुद्ध की एक बैठी हुई मूर्ति के नीचे खुदा है और उसमें लिखा है कि इस मूर्ति को कुमारगुप्त ने संवत् १२९ (सन् ४४८ ईस्वी में) स्थापित किया था।

प्रसिद्ध मन्दसोर का शिलालेख जिसे कि फ्लीट साहब ने पाया था गुप्त राजाओं का खुदवाया हुआ नहीं है परन्तु उसमें कुमार गुप्त का उल्लेख है और इसलिये उसका वर्णन यहां किया जा सकता है। यह सेंधिया के राज्य के दशपुर ग्राम में महादेव के एक मन्दिर के आगे की ओर एक पत्थर पर खुदा हुआ है। इस में लिखा है कि इस स्थान पर कुछ रेशम बीनने

वाले लोग गुजरात से आकर बसे और उन में से कुछ लोगों ने एक अच्छा व्यापार स्थापित किया। "जब कुमारगुप्त सारी पृथ्वी का राज्य करता था" उस समय विश्ववर्म्मन् नामक एक राजा था और उस का पुत्र बन्धुवर्म्मन् दशपुर में उस समय राज्य करता था जब कि बीनने वालों के समुदाय ने वहां एक मन्दिर बनवाया जोकि उस समय समाप्त हुआ "जिस ऋतु में कि बिजली की गरज सोहावनी जान पड़ती है, और जब मालव जाति को स्थापित हुए ४९३ वर्ष हो चुके थे"

" मालवानां गणस्थित्या याते शत चतुष्टये
तृणवत्य-धिकाब्दानां ऋतौ सेव्य घनस्वने"

और इस शिलालेख में यह भी लिखा है कि इस मन्दिर की मरम्मत उस वर्ष में हुई जब कि उसी संवत को व्यतीत हुए ५२९ वर्ष हो चुके थे।

फ्लीट साहब का मत है कि दशपुर के बीननेवालों के शिला लेख में जिस कुमार गुप्त का उल्लेख है वह गुप्त वंश का वही कुमार गुप्त है और इस शिलालेख में जो संवत् लिखा है वह मालव जाति का संवत् है जो कि अब विक्रमादित्य का संवत् कहा जाता है और ईसा के ५६ वर्ष पहिले से आरम्भ होता है। अतएव यह मन्दिर (४९३–५६) =४३७ ईस्वी में बना था और उस की मरम्मत (५२९–५६) =४७३ ईस्वी में हुई।

इससे एक आश्चर्यजनक बात विदित होती है, क्योंकि यदि फ्लीट साहब का विचार ठीक है तो विक्रमादित्य के संवत् के स्थापित होने का सच्चा कारण विदित हो गया। इस संवत् को विक्रमादित्य ने ईसा के ५६ वर्ष पहले स्थापित नहीं किया था जैसा कि पूर्व समय के विद्वानों का अनुमान था। परन्तु यह

संवत् वास्तव में मालव लोगों का जातीय संवत् है और आगे चल कर इस में विक्रमादित्य का भी नाम मिल गया जिसने कि ईसा की छठीं शताब्दी में मालव लोगों को सब से श्रेष्ठ जाति बना दी थी ।

कुमार गुप्त का पुत्र स्कन्दगुप्त उसका उत्तराधिकारी हुआ । उस का एक शिलालेख गाज़ीपूर के ज़िले में मिला है और वह भितरी की लाट के नाम से प्रसिद्ध है । उस में गुप्त राजाओं की वंशावली आरम्भ से लेकर स्कन्द गुप्त तक दी है । परन्तु इससे अधिक काम का एक शिलालेख बम्बई प्रान्त के जूनागढ़ में मिला है । उस में विष्णु की आराधना के उपरान्त लिखा है कि स्कन्द गुप्त ने " जिसने कि समुद्रों तक सब पृथ्वी जीत ली थी और जिस के यश को म्लेच्छों के देश में" उस के शत्रु लोग भी मानते थे पर्णदत्त को सौराष्ट्र लोगों के देश का राजा नियत किया । पर्णदत्त ने अपने पुत्र चक्रपालित को नियत किया । संवत् १३६ (अर्थात् सन् ४५५ ईस्वी) में गिर्नार के नीचे की झील की बांध अतिवृष्टि के कारण टूट गई और यह बांध दो महीने में संवत् १३७ में फिर बनवाई गई और यही शिलालेख का कारण है ।

स्कन्दगुप्त गुप्त वंश का अन्तिम बड़ा राजा जान पड़ता है और इस के उपरान्त इस वंश में छोटे छोटे राजा हुए । बुद्धगुप्त का एक शिलालेख मध्य प्रदेश में इरन में मिला है और वह संवत् १६४ अर्थात ४८४ ई० का है । उस में लिखा है कि बुद्ध गुप्त का अधीनस्थ राजा सुरश्मि चन्द्र कालिन्दी और नर्मदा के बीच के देश में राज्य करता था । उस शिलालेख में जनार्दन के नाम से विष्णु देवता की पूजा के निमित एक स्तम्भ स्थापित करने का वृत्तान्त है ।

"इरन के एक दूसरे शिलालेख में भानु गुप्त का उल्लेख है और उस में लिखा है कि गोपराज नामक एक सर्दार उस के साथ युद्ध में आ कर मारा गया। गोपराज की आज्ञाकारिणी प्रिय और सुन्दर स्त्री ने चिता में उस का साथ दिया"।

प्रबल गुप्त वंश के कि जिसने भारतवर्ष में १०० वर्ष के ऊपर तक सर्वोच्च अधिकार अपने हाथ में रक्खा था उस के नाश होने के विषय में बड़ा मत भेद है। डाक्टर फर्ग्युसन साहब कहते हैं कि हून लोगों के उस टीड़ी दल ने जिस ने कि एशिया में दूर दूर तक आक्रमण किया था, फारस को निर्बल कर दिया था, उसी ने भारतवर्ष में गुप्त वंश का भी नाश किया। फ्लीट साहब इस बात को विश्वास करने के प्रमाण दिखलाते हैं कि पञ्जाब का प्रतापी और कट्टर मिहिरकुल और उस का पिता तोरमान हून जाति का था। स्कन्दगुप्त की मृत्यु के उपरान्त तोरमान ने (जिसने कि हून लोगों को एक बार भगा दिया था) गुप्त राजाओं से लगभग ४६६ ईस्वी में पूर्वी मालवा देश छीन लिया। मिहिरकुल ने अपनी विजय और लोगों का नाश करना लगभग ५१५ ईस्वी में आरम्भ किया और अन्त में उसे उत्तरी भारतवर्ष के प्रतापी राजा यश धर्म्मन ने दमन किया। इस प्रकार मध्य भारतवर्ष में हून लोगों का अधिकार केवल थोड़े समय तक रहा परन्तु कोस्मा इण्डिको प्लयूस्टीज ने छठीं शताब्दी में लिखा है कि उस के समय तक भी हून लोग बड़े प्रबल थे और वे पञ्जाब में आकर बसे थे और वहां का राज्य करते थे।

ये तथा अन्य विदेशी आक्रमण करने वाले, जिनके विषय में हम पहिले लिख चुके हैं, भारतवर्ष के लोगों में आकर बसे, उनकी भाषा धर्म और सभ्यता को ग्रहण किया और इस प्रकार उन्हों ने एक नई हिन्दू जाति स्थापित की जिस ने फि पौराणिक समय के अन्त में अर्थात् ९ वीं और १० वीं शताब्दियों में राजकीय उलट फेर में एक विशेष भाग लिया।

अध्याय ६

फाहियान का भारतवर्ष का वृत्तान्त ।

पिछले ३ अध्यायों में हमने अपने पाठकों को भारतवर्ष में बौद्ध काल के मुख्य मुख्य राजवंशों का कुछ वृत्तान्त दिया है जोकि दुर्भाग्य वश बहुत सूक्ष्म और थोड़ा है । परन्तु केवल राज्य वंशों का वृत्तान्त ही भारतवर्ष का पूरा इतिहास नहीं है और इस लिये यह आवश्यक है कि हम भारतवर्ष में रहने वाली उन असंख्य जातियों के प्रधान नगरों का, उनके शिल्प और सभ्यता का अधिक स्पष्ट परिचय दें। सौभाग्य वश इस कार्य के लिये हमें कुछ सामग्रियाँ मिलती हैं और वे उस चीन के यात्री के ग्रंथों में हैं जो कि बौद्ध काल के अन्त में भारतवर्ष में आया था।

फाहियान भारतवर्ष में लगभग ४०० ईस्वी में आया और वह अपना वृत्तान्त उद्यान अर्थात् काबुल के आस पास के देश से आरम्भ करता है और लिखता है कि यहीं से उत्तरी भारत-वर्ष आरम्भ होता है। उस समय उद्यान में मध्य भारतवर्ष की भाषा बोली जाती थी और यहां के लोगों का पहिरावा भोजन आदि भी मध्य भारतवर्ष के लोगों की ही नाईं था। उस समय यहां बौद्ध धर्म्म का बड़ा प्रचार था और ५०० संघ आराम अर्थात् बौद्ध सन्यासियों के मठ थे। उसने स्वतः गान्धार, तक्ष शीला, और पेशावर में होकर यात्रा की और पेशावर में उसने एक अद्भुत सुन्दरता का सुदृढ़ और ऊँचा बौद्ध मीनार देखा।

नगरहार और अन्य देशों में यात्रा करता हुआ, सिन्ध नदी को पार कर फाहियान अन्त में यमुना नदी के तट पर मथुरा में पहुंचा। इस नदी के दोनों पार २० संघ आराम बने थे जिनमें कदाचित तीन हजार बौद्ध सन्यासी रहते थे। यहां बौद्ध धर्म्म का बड़ा प्रचार हो रहा था। "विचापान के आगे पश्चिमी भारतवर्ष के देश हैं। इन देशों (राजपूताने) के राजा लोग सब बौद्ध धर्म में दृढ़ विश्वास रखने वाले हैं...इसके दक्षिण में वह बीच का देश है जो मध्य देश कहलाता है। इस देश का जलवायू गरम और एकसा रहता है, न तो वहां पाला पड़ता है और न बर्फ। वहां के लोग बहुत अच्छी अवस्था में हैं, उन्हें राज्य कर नहीं देना पड़ता और न राज्य की ओर से उन्हें कोई रोक टोक है। केवल जो लोग राजा की भूमि को जोतते हैं उन्हें भूमि की उपज का कुछ अंश देना पड़ता है। वे जहां जाना चाहें जा सकते और जहां रहना चाहें रह सकते हैं। राजा शारीरिक दण्ड नहीं देता। अपराधियों को उनकी दशा के अनुसार हलका वा भारी जुर्माना लगाया जाता है। यदि वे कई बार राज द्रोह करें तो भी केवल उनका दहिना हाथ काट लिया जाता है। राजा के शरीर रक्षक जो कि दहिनी और बांई ओर उसकी रक्षा करते हैं नियत वेतन पाते हैं। सारे देश में केवल चाण्डालों को छोड़कर कोई लहसुन वा प्याज नहीं खाता कोई किसी जीव को नहीं मारता, और मदिरा नहीं पीता...इस देश में लोग सूवर वा चिड़िया नहीं रखते और पशु का व्यापार नहीं करते। बाजार में मदिरा की दूकानें नहीं होती। बेचने में लोग कौड़ियों को काम में लाते हैं। केवल चाण्डाल लोग हत्या करके मांस बेचते हैं। बुद्ध के निर्वाण के समय से आज तक इन देशों के अनेक राजाओं, रईसों और गृहस्थों ने यहां

विहार बनवाए हैं और उनके व्यय के लिये खेत, मकान बगीचे, मनुष्य और बैल दिए हैं । खुदे हुए अधिकार पत्र तय्यार करवाए जाते थे और वे एक राजा के उपरान्त दूसरे राजा के राज्य में स्थिर रहते थे । उन्हें किसी ने छीनने का उद्योग नहीं किया अतएव आज तक उनमें कोई बाधा नहीं पड़ी । इन में रहने वाले सब सन्यासियों के लिये बिछौने, चटाइयां, भोजन, पानी, और कपड़े अपरिमित रूप से दिए जाते हैं और यह बात सब जगह है । ”

हमारा यात्री संकाश्य से होता हुआ कन्नौज में आया । हमारे पाठकों को स्मरण होगा कि इस समय कन्नौज गुप्त राजाओं की बढ़ी चढ़ी राजधानी थी परन्तु दुर्भाग्य वश फाहियान ने इस नगर के दो संघआरामों को छोड़ कर और किसी के विषय में कुछ नहीं लिखा है ।

सांची में होकर फाहियान, कोशल और उसकी प्राचीन राजधानी श्रावस्ती में आया । परन्तु इस बड़े नगर का बुद्ध के समय से अब नाश होगया था और चीनी यात्री ने इस नगर में केवल बहुत थोड़े से निवासी देखे अर्थात् सब मिला कर कोई २०० घर थे । परन्तु जेतवन की, जहां बौद्ध ने बहुधा उपदेश दिया था, स्वाभाविक सुन्दरता अभी चली नहीं गई थी और वहां का विहार अब स्वच्छ तालाब सोहावने कुँज और रंग बिरंग के असंख्य फूलों से सुशोभित था । इस विहार के सन्यासियों ने यह सुनकर कि फाहियान और उसका साथी चीन देश से आया है कहा "बड़ा आश्चर्य है कि पृथ्वी की सीमा प्रदेश के लोग धर्म की खोज की अभिलाषा से इतनी दूर तक आते हैं ।"

गौतम का जन्मस्थान कपिलवस्तु अब उस सुशोभित दशा में नहीं था। "इस नगर में न तो कोई राजा है न प्रजा, वह एक बड़े भारी बियाबान की नाईं होगया है। उसमें केवल कुछ सन्यासी लोग और गृहस्थों के लगभग १० घर हैं।" कुशिनगर भी, जहां कि गौतम की मृत्यु हुई थी, अब नगर नहीं रह गया था। वहां केवल बहुत थोड़े से लोग रहते थे और ये लोग केवल वेही थे जिनका कि वहां के रहने वाले सन्यासियों से कोई न कोई सम्बन्ध था।

तब फाहियान वैशाली में आया जोकि एक समय घमण्डी लिच्छवियों की राजधानी थी और जहां गौतम ने अम्बपालि वेश्या का आतिथ्य स्वीकार किया था। यहां बौद्धों की दूसरी सभा भी हुई थी और फाहियान ने उसका वर्णन लिखा है "बुद्ध के निर्वाण के १०० वर्ष पीछे वैशाली के कुछ भिक्षुकों ने दस बातों में विनय के नियमों को यह कह कर तोड़ डाला कि बुद्ध ने ऐसा करने की आज्ञा दी है। उस समय अरहतों और सत्यमतावलम्बी भिक्षुकों ने, जो कि सब मिलाकर १०० थे, विनयपितक को फिर से मिलान कर के संग्रहीत किया।

गंगा को पार कर हमारा यात्री पाटलीपुत्र अर्थात् पटने में पहुंचा, जिसे कि पहिले पहिल अजात शत्रु ने अपने उत्तरी शत्रुओं को रोकने के लिये बनाया था और जो इसके उपरान्त प्रतापी अशोक की राजधानी थी। " इस नगर में वह राजमहल है जिसके भिन्न भिन्न भागों को उसने (अशोक ने) देवों से पत्थर का ढेर इकट्ठा करवा कर बनवाया था। इसकी दीवार, द्वार और पत्थर की नकाशी मनुष्य की बनाई हुई नहीं हैं, उनके खँडहर अब तक हैं।" अशोक के गुम्बज के निकट एक विशाल और सुन्दर संघाराम और मन्दिर

था जिसमें कोई छः वा सात सौ सन्यासी रहते थे। प्रसिद्ध ब्राह्मण, गुरु मंजुश्री स्वयं इस बौद्ध संघाराम में रहता था और बौद्ध श्रामन लोग उसका सत्कार करते थे। यहां पर बौद्धों के विधान उस समय जिस धूम धड़ाके से किए जाते थे उसका भी वर्णन है। "प्रतिवर्ष दूसरे मास के आठवें दिन मूर्तियों की एक यात्रा निकलती है। इस अवसर पर लोग एक चार पहिये का रथ बनवाते हैं और उस पर बांसों को बांध कर उसे पांच खण्ड का बनाते हैं और उसके बीच में एक एक खम्भा रखते हैं जो कि तीनफले भाले की नाईं होता है और उँचाई में २२ फीट या इससे भी अधिक होता है। इस प्रकार यह एक मन्दिर की नाईं देख पड़ता है। तब वे उसे उत्तम श्वेत मलमल से ढांकते हैं और फिर उस मलमल को भड़कीले रंगों से रंगते हैं। फिर देवों की मूर्तियां बना कर और उन्हें सोने चांदी और कांच से आभूषित कर, कामदार रेशमी चन्दुए के नीचे बैठाते हैं। तब रथ के चारों कोने पर वे ताखा बनाते हैं और उनमें बुद्ध की बैठी हुई मूर्तियां जिनकी सेवा में एक बोधिसत्व खड़ा रहता है बनाते हैं। ऐसे ऐसे कदाचित् बीस रथ बनाए जाते हैं और वे भिन्न भिन्न प्रकार से सज्जित किए जाते हैं। इस यात्रा के दिन बहुत से सन्यासी और गृहस्थ लोग एकत्रित होते हैं। अब वे फूल और धूप चढ़ाते हैं तो बाजा बजता है और खेल होता है। ब्रह्मचारी लोग पूजा करने के लिये आते हैं। तब बौद्ध लोग एक एक करके नगर में प्रवेश करते हैं। नगर में आने पर वे फिर ठहरते हैं। तब रातभर वे रोशनी करते हैं, गाना और खेल होता है और पूजा होती है। इस अवसर पर भिन्न भिन्न देशों से जो लोग एकत्रित होते हैं वे इस प्रकार कार्य्य करते हैं।" ईसा की पाँचवीं शताब्दी में बौद्ध धर्म्म ने

बिगड़ कर जो मूर्तिपूजा का रूप धारण किया था उसका यह आँखों देखा अमूल्य वृत्तान्त है।

इससे अधिक मनोरञ्जक पाटलीपुत्र के धर्मार्थ चिकित्सालयों का वृत्तान्त है। "इस देश के अमीरों और गृहस्थों ने नगर में चिकित्सालय बनवाए हैं जहां कि सब देश के गरीब लोग, जिन्हें आवश्यकता हो जो लंगड़े हों या रोगग्रस्त हों, रह सकते हैं। वहां वे उदारता से सब प्रकार की सहायता पाते हैं। चिकित्सक उनके रोगों की देखभाल करता है और रोग के अनुसार उनके खाने पीने और दवा काढ़े और वास्तव में उनके सुख की सब वस्तुओं के लिये आज्ञा देता है। आरोग्य होने पर वे अपनी इच्छानुसार चले जाते हैं।

फाहियान तब अजातशत्रु के नये बनवाए हुए नगर राजगृह में तथा बिम्बिसार के प्राचीन नगर में गया। यहां पर इस यात्री ने उस प्रथम बौद्ध संघ का उल्लेख किया है जो कि बुद्ध की मृत्यु के उपरान्त ही पवित्र पाठों को संग्रहीत करने के लिये हुआ था। "पर्वत के उत्तरी ओर एक पत्थर की गुफा है जो कि चेति कहलाती है। यहीं बुद्ध के निर्वाण के पीछे पवित्र पुस्तकों को संग्रहीत करने के लिये ५०० अरहत एकत्रित हुए थे।

गया में फाहियान ने सब उजाड़ और बियाबान की नाईं पाया। उसने प्रसिद्ध बो वृक्ष तथा बुद्ध की तपस्याओं और सर्वज्ञता प्राप्त करने से सम्बन्ध रखने वाले सब स्थानों को देखा और उसने उन दन्त कथाओं को लिखा है जो कि गौतम की मृत्यु के उपरान्त गढ़ी गई थीं। तब वह काशी के देश और बनारस के नगर में आया और वहां उसने उस मृगदाव को देखा जहां गौतम ने पहिले पहल सत्यधर्म को प्रगट किया

था। यहां उस समय दो संघाराम बन गए थे। वहां से वह कौशाम्बी के प्राचीन नगर में गया, जहां गौतम ने बहुत समय तक उपदेश किया था।

बनारस से फाहियान पाटलीपुत्र को लौटा। वह विनय-पितक की हस्तलिखित प्रति की खोज में था। पर "सारे उत्तरी भारतवर्ष में भिन्न भिन्न अधिकारियों ने आज्ञाओं के जानने के लिये केवल मुख की कथा पर भरोसा किया है और उन्होंने कोई मूल ग्रन्थ नहीं रक्खा जिससे नकल की जा सके। इसीलिये फाहियान इतनी दूर मध्य भारतवर्ष तक आया। परन्तु वहां बड़े संघाराम में उसे आज्ञाओं का एक संग्रह मिला।

गङ्गा नदी के मार्ग से आगे बढ़ता हुआ यह यात्री इस नदी के दक्षिण किनारे पर चम्पा नगर में पहुंचा। हम पहिले ही देख चुके हैं कि चम्पा अङ्ग अर्थात् पूर्वी बिहार की राजधानी थी और वह भागलपूर के निकट स्थित थी। पूर्व और दक्षिण की ओर आगे बढ़ते हुए फ़ाहियान ताम्रपत्नी में पहुंचा जो कि उस समय गङ्गा के मुहाने पर एक बड़ा बन्दरगाह था। उस देश में चौबीस संघाराम थे उन सब में सन्यासी लोग रहते थे, उनमें साधारणतः बुद्ध की आज्ञा का पालन किया जाता था। फ़ाहियान यहां दो वर्ष तक रह कर पवित्र पुस्तकों की नकल करता और मूर्ति के चित्र खींचता रहा। तब वह एक सौदागरी जहाज पर सवार हुआ और जाड़े की ऋतु की पहिली उत्तम हवा में जहाज ने दक्षिण-पश्चिम दिशा को प्रस्थान किया। वे लोग चौदह दिन और चौदह रात की यात्रा के उपरान्त "सिंहों के देश" (अर्थात् सिंहल वा लङ्का) में पहुंचे।

हमारा यात्री कहता है कि लङ्का में पहिले कोई निवासी नहीं थे, परन्तु यहां बहुत से व्यापारी लोग आकर धीरे धीरे बस गये और इस प्रकार यह एक बड़ा राज्य हो गया। तब बौद्ध लोगों ने आकर (फ़ाहियान कहता है कि बुद्ध ने आकर) लोगों में अपने धर्म्म का प्रचार किया। लङ्का की जलवायु अच्छी थी और वहां वनस्पति हरी भरी रहती थी और नगर के उत्तर ओर ४७६ फीट ऊंचा एक बड़ा गुंबज़ और एक संघाराम था जिसमें ५००० सन्यासी रहते थे। परन्तु इन सुहावने दृश्यों के बीच हमारे यात्री का हृदय अपने घर के वास्ते घबराने लगा जिससे कि जुदा हुए उसे बहुत वर्ष हो गए थे। एक अवसर पर एक व्यापारी ने बुद्ध की एक २२ फीट ऊंची रत्नजटित मूर्ति को चीन का बना हुआ एक पंखा भेट किया जिससे फाहियान को उसकी जन्मभूमि का स्मरण हो आया। वह बड़ा उदास हुआ और उसकी आंखों में आंसू भर आए।

लङ्का में दो वर्ष तक रह कर और विनयपिटक तथा अन्य ग्रन्थों को जो चीन में "अब तक विदित नहीं थे" नकल करके फाहियान एक बड़े सौदागरी जहाज पर सवार हुआ जिसमें लगभग २०० मनुष्य थे। एक बड़ा तूफान आया और बहुत सा असबाब समुद्र में फेंक देना पड़ा। फाहियान ने अपना घड़ा और कटोरा समुद्र में फेंक दिया और उसे "केवल यह भय था कि व्यापारी लोग कहीं उसके पवित्र ग्रन्थ और चित्र समुद्र में न फेंक दें। यह तूफान तेरह दिन पर कम हुआ और यात्री लोग एक छोटे टापू पर पहुंचे और वहां जहाज के छेद को बन्द करने के उपरान्त पुनः समुद्र में प्रस्थान किया गया। "इस समुद्र में बहुत से समुद्री डाकू हैं जो अचानक तुम पर छापा मार कर सब वस्तुओं को नष्ट कर देते हैं। स्वयं समुद्र

का कहीं पारावार नहीं और दिशा जानने के लिये सूर्य चन्द्रमा या तारों को देखने के सिवाय और कोई उपाय नहीं है और उन्हीं के अनुसार यात्रा करनी पड़ती है······अन्त को तूफान इत्यादि साफ हो गया उन्होंने अपना स्थान निर्दिष्ट किया और एक बार पुनः ठीक मार्ग को पाकर उन्होंने यात्रा आरम्भ की। और ९० दिन के उपरान्त पो-टी (जावा वा सुमात्रा) में पहुंचे। "इस देश में नास्तिक और ब्राह्मण लोग अधिकता से हैं।

यहां लगभग पांच मास ठहर कर फ़ाहियान एक दूसरे सौदागरी जहाज़ पर सवार हुआ जिसमें लगभग २०० मनुष्य थे और जिसमें ५० दिन के लिये भोजन की सामग्री थी। एक मास यात्रा करने पर समुद्र में एक तूफान आया और इस पर मूढ़ ब्राह्मण लोग परस्पर बात करने लगे कि "हम लोगों ने इस श्रमन (फ़ाहियान) को जहाज पर चढ़ा लिया है इसी कारण हम लोगों का शगुन अच्छा नहीं हुआ और हम लोग इस दुर्घटना में पड़ गए हैं। आओ अब जो टापू मिले उस पर इस भिक्षु को उतार दें जिसमें एक मनुष्य के लिये हम सबका नाश न हो।" परन्तु फ़ाहियान के संरक्षक ने वीरता से उसका साथ दिया और किसी निर्जन टापू में उसकी मृत्यु होने से उसे बचा लिया। ८२ दिन की यात्रा के उपरान्त वे लोग चीन के दक्षिणी किनारे पर पहुँच गए।

अध्याय ७

बौद्धों की इमारत और पत्थर के काम ।

हिन्दू लोगों का ईसा के पहिले चौथी और तीसरी शताब्दियों में पहिले पहल अपने समान की सभ्य जाति से संसर्ग हुआ और वे लोग अपने शिल्प और विद्या की उन्नति के लिये यूनानियों के कितने अनुगृहीत हैं इसके विषय में बहुत कुछ लिखा जा चुका है। स्वभावतः बहुत से ग्रन्थकारों ने इस विषय में शीघ्रता से यह निश्चय किया है कि घर बनाना और पत्थर का काम और लिखना तथा अपने अक्षर भी, हिन्दुओं ने पहिले पहल यूनानियों से सीखे ।

किसी सभ्य जाति का संसर्ग किसी बड़ी और सभ्य जाति से होने से उनके शिल्प और सभ्यता में बहुत कुछ उन्नति अवश्य प्राप्त होती है। ईसा के पहिले चौथी और तीसरी शताब्दियों में यूनानी लोग निस्सन्देह संसार की सब जातियों में बड़े सभ्य थे, और उनमें विशेषता यह थी कि सिकन्दर ने जिन जिन देशों को जीता था उन सब में उन्होंने अपनी अद्भुत सभ्यता का प्रचार किया यहां तक कि एशियाओक से लेकर बैक्ट्रिया तक समस्त पश्चिमी एशिया में यूनान की सभ्यता शिल्प और चाल व्यवहार प्रचलित हो गई। हिन्दूलोग बहुत से शिल्पों की उन्नति में ही नहीं वरन् कई कठिन शास्त्रों तथा ज्योतिष शास्त्र इत्यादि के लिये भी यूनानियों के बहुत अनुगृहीत हैं। यह बात भारतवर्ष के सब इतिहासज्ञ स्वीकार करते हैं और ऐसी मित्रता की सेवाओं का जिसे कि एक शिक्षित

जाति ने दूसरी जाति के लिये किया है स्वीकार करना हमारा आनन्ददायक कर्तव्य होगा, जहां कहीं कि हमको ऐसी सेवाओं को स्वीकार करने के प्रमाण मिलें अथवा उसका अनुमान ही हो। परन्तु जहां कहां प्रमाणों का अभाव हो वा जहां इस अनुमान के विरुद्ध प्रमाण मिलते हों उन अवस्थाओं में हमें अपने पाठकों को शीघ्रता से कोई अनुमान कर लेने से सचेत करना आवश्यक है।

घर बनाने की विद्या के लिये हिन्दू लोग यूनानियों के अनुगृहीत नहीं हैं। बौद्ध हिन्दुओं ने आरम्भ ही से घर बनाने की विद्या की स्वयं उन्नति की थी, वे अपने घर निराले ही आकार के बनाते थे और यह आकार शुद्ध भारतवर्ष का है, उन्हों ने किसी विदेशी इमारत से इसे नहीं उद्धृत किया है। गान्धार और पञ्जाब में ऐसे खम्भे पाए गए हैं जोकि स्पष्ट आयोनिक ढङ्ग के हैं और साधारणतः इमारत भी यूनानी ढङ्ग की है। परन्तु स्वयं भारतवर्ष में बम्बई से लेकर कटक तक ईसा के तत्काल पीछे और पहिले की इमारतें शुद्ध भारतवर्ष के ढङ्ग की हैं। यदि हिन्दुओं ने घर बनाने की विद्या पहिले पहल यूनानियों से सीखी होती तो ऐसा न होता।

पत्थर की मूर्तियों के काम के लिये भी हिन्दू लोग (पञ्जाब को छोड़ कर) यूनानियों के अनुगृहीत नहीं हैं। डाक्टर फरग्यूसन साहब भरुत के जंगले (२०० ई० पू०) का वर्णन करते हुए लिखते हैं "इस बात पर जितना जोर दिया जाय थोड़ा है कि इसमें जो शिल्पकारी देखी जाती है वह शुद्ध देशी है। उसमें ईजिप्ट के होने का कुछ भी चिन्ह नहीं है वरन यह सब प्रकार से उसके विरुद्ध है, और न उसमें यूनानी शिल्प का कोई चिन्ह है, और न यही कहा जा सकता

है कि इसमें की कोई बात बेबिलोनिया वा एसीरिया से उद्धृत की गई है। खम्भों के सिरे कुछ कुछ पर्सी पोलिस की बनावट से मिलते हैं और उनमें फूल पत्ती का काम भी वहीं के जैसा है, परन्तु इसके विरुद्ध शिल्पकारी और विशेषतः अँगलों में मूर्ति की खोदाई का काम स्वयं भारतवासियों का और केवल भारतवासियों का ही जान पड़ता है। "

अब हम हिन्दुओं की इमारत और पत्थर की मूर्ति के काम के कुछ उन अद्भुत नमूनों का संक्षेप में वर्णन करेंगे जो कि ईसा के तत्काल पहिले और पीछे की शताब्दियों के बने हुए अब तक वर्तमान हैं और इस विषय में डाक्टर फरग्यूसन साहब हमारे पथदर्शक होंगे। ऐसे नमूने प्रायः सभी बौद्धों के बनाए हुए हैं। बौद्धों के पहिले पत्थर का काम अधिकतर इंजीनियरी के कामों यथा नगर की दीवालों फाटकों पुलों और नदी की बांधों में होता था और यदि कभी कभी महल और मन्दिर इत्यादि भी पत्थर के बनाए जाते रहे हों तो इस समय उसका कोई नमूना प्राप्त नहीं है। इसके सिवाय हिन्दुओं और जैनों की पत्थर की इमारतें जो कि भारतवर्ष में सर्वत्र अधिकता से पाई जाती हैं ईसा की पांचवीं शताब्दी के उपरान्त की बनी हुई हैं और इसलिये हम पौराणिक काल में उनके विषय में लिखेंगे। इस अध्याय में हम केवल बौद्ध काल के शिल्प का वर्णन करेंगे और ऐसी इमारतें सब बौद्धों की बनाई हुई हैं।

डाक्टर फरग्यूसन साहब इनके पांच विभाग करते हैं अर्थात्—

(१) लाट या पत्थर के खम्भे जिनमें प्रायः शिलालेख खुदे रहते हैं ।

(२) स्तूप जो कि किसी पवित्र घटना या स्थान को प्रगट करने के लिये बनवाए जाते थे या जिनमें बुद्ध के मृत शरीर का कुछ कल्पित शेष भाग समझा जाता था ।

(३) जँगले जिनमें बहुधा बहुत अच्छी नकाशी के काम होते थे और जो बहुधा स्तूपों को घेरने के लिये बनाए जाते थे ।

(४) चैत्य अर्थात् मन्दिर ।

(५) विहार अर्थात् मठ ।

सब से प्राचीन लाट वे हैं जिन्हें भारतवर्ष के अनेक भागों में अशोक ने बनवाया था और जिनमें उसकी प्रजा के लिये बौद्ध धर्म के नियम और सिद्धान्त खुदे हुए हैं । सब से प्रसिद्ध लाट दिल्ली और इलाहाबाद की है जिनपर खुदे हुए लेखों को पहिले पहल जेम्स प्रिन्सेप साहब ने पढ़ा था । इनमें से दोनों पर अशोक के लेख खुदे हुए हैं, और इलाहाबाद की लाट पर अशोक के उपरान्त गुप्त वंश के समुद्रगुप्त का लेख भी खुदा हुआ है जैसा कि हम पहिले कह चुके हैं और इसमें इस राजा के प्रताप का वर्णन और उसके पूर्वजों के नाम दिए हैं । ऐसा जान पड़ता है कि यह लाट गिरा दी गई थी और इसे शाहंशाह जहांगीर ने सन् १६०५ ईस्वी में पुनः बनवाया और उस पर अपना राज्य आरम्भ होने के स्मारक की भांति फारसी अक्षरों में एक लेख खुदवाया । बहुत सी अन्य लाटों की नाईं इस लाट का भी सिरा नहीं है, परन्तु तिरहुत की लाट के सिरे पर एक शेर की मूर्ति और मथुरा और कन्नौज के बीच में संकाश्य की लाट के सिरे पर

एक खण्डित हाथी है परन्तु वह इतना खण्डित है कि कनिंघम ने उसे शेर समझा था। बम्बई और पूना के बीच कर्ली की गुफा के सामने जो लाट है उसके सिरे पर चार शेर हैं। ३२ नं० की दोनों लाटों का सम्बन्ध गुप्त राजाओं के संवत् से कहा जाता है।

कुतुब मीनार के निकट जो लोहे का अद्भुत खम्भा है उसे दिल्ली जाने वाले प्रत्येक यात्री ने देखा होगा। यह पृथ्वी के ऊपर २२ फीट है और २० इंच पृथ्वी के भीतर है, और उस का व्यास नीचे १६ इञ्च और सिरे पर १२ इञ्च है। उस पर भी अन्य लाटों की नाईं लेख खुदा हुआ है परन्तु दुर्भाग्य वश इस लेख में कोई तिथि नहीं दी है। जेम्स प्रिन्सेप साहब कहते हैं कि यह चौथी वा पांचवीं शताब्दी का है और डाक्टर भाऊदाजी इसे पांचवीं वा छठीं शताब्दी का बतलाते हैं। इसका समय पांचवीं शताब्दी मान कर डाक्टर फरग्यूसन साहब के अनुसार "यह हमारी आंख खोल कर बिना सन्देह के बतलाता है कि हिन्दू लोग उस समय में लोहे के इतने बड़े खम्भे को बनाते थे, जो कि यूरप में बहुत इधर के समय में भी नहीं बने हैं और जैसे कि अब भी बहुत कम बनते हैं। और इसके कुछ ही शताब्दी के उपरान्त इस लाट के बराबर के खम्भों को कनरिक के मन्दिर में धरन की भांति लगे हुए मिलने से हम को विश्वास करना चाहिए कि वे लोग इस धातु का काम बनाने में इसके उपरान्त की अपेक्षा बड़े दक्ष थे।

और यह बात भी कम आश्चर्यजनक नहीं है कि १४०० वर्ष तक हवा और पानी में रह कर उसमें अब तक भी मुर्चा नहीं लगा है और उसका सिरा तथा खुदा हुआ लेख अब तक भी वैसाही स्पष्ट और वैसाही गहिरा है जैसा कि वह १४०० वर्ष पहले बनाया गया था।"

स्तूपों में भिलसा के स्तूप प्रसिद्ध हैं। पूरब से पश्चिम तक १० मील और उत्तर से दक्षिण तक ६ मील के भीतर भूपाल राज्य में भिलसा गांव के निकट इन स्तूपों के पांच वा छः समूह हैं जिन में लगभग २५ वा ३० स्तूप समूह होंगे। जेनरल कनिंगहाम साहब ने पहिले पहल इनका एक वृत्तान्त सन् १८५४ ईस्वी में प्रकाशित किया था और तब से उनका कई बेर वर्णन किया गया है। इन स्तूपों में सब से प्रधान सांची का बड़ा स्तूप है जिस की बैठक १४ फीट ऊँची और गुम्बज ४२ फीट ऊँचा है और आधार के ठीक ऊपर उसका व्यास १०६ फीट है। जँगले ११ फीट ऊँचे हैं और फाटक जिसमें कि बहुत ही अच्छा पत्थर का काम है और जिसका वर्णन हम आगे चलकर करेंगे ३३ फीट ऊँचा है।

इस बड़े हद्दे के बीच का भाग बिल्कुल ठोस है और वह मिट्टी में जमाई हुई ईंटों से बना है परन्तु उसका बाहरी भाग चिकने किए हुए पत्थरों का बना हुआ है। इसके ऊपर मसाले की एक तह थी जिस पर निस्सन्देह चित्रकारी की हुई थी।

सांची के आस पास दूसरे बहुत से स्तूपों के समूह हैं अर्थात् एक तो ६ मील दूर सोनारी पर, दूसरा उसके तीन मील आगे सतधर पर और सांची से ७ मील दूर भोजपुर में अनेक समूह हैं। एक दूसरा समूह भोजपुर से पांच मील दूर अधधर में है। सब मिला कर एक छोटे से जिले में ६० स्तूपों से कम नहीं हैं।

हमारे बहुत से पाठक जो बनारस गए होंगे उन्हों ने सारनाथ का स्तूप अवश्य देखा होगा जो उसी प्राचीन मृगदाय में बना हुआ है जहां कि गौतम ने पहिले पहल अपने नवीन धर्म का उपदेश किया था। उसका आधार पत्थर का ९३ फीट

के व्यास का है जो कि ४३ फीट ऊँचा ठोस बना हुआ है। उसके ऊपर ईंटा का काम है जो कि आस पास की भूमि से १२८ फीट ऊँचा है। उसके नीचे का भाग अष्टपहल बना हुआ है जिससे प्रत्येक ओर एक आला खुदा है। जेनरल कनिंग-हाम साहब का विश्वास है कि इसके बनने का समय ईसा की छठीं वा ७ वीं शताब्दी है।

बङ्गाल में एक दूसरा स्तूप है जो कि जरासिन्ध की बैठक के नामसे प्रसिद्ध है। उसका व्यास २८ फीट और ऊँचाई २१ फीट है और वह ४ फीट के आधार पर बनाया गया है। उसका उल्लेख हुनत्साङ्ग ने किया है और उसके बनने का समय सम्भवतः ५०० ईस्वी है।

अमरावती का स्तूप वा दगोब जिसे कि हुनत्साङ्ग ने देखा था, अब नहीं है। गान्धार देश में कई प्रकार के स्तूप हैं। परन्तु कनिष्क का वह बड़ा दगोब जो कि ४७० फीट से अधिक ऊँचा था और जिसे फाहियान और हुनत्साङ्ग ने देखा था अब नहीं है। गान्धार के स्तूपों में सब से आवश्यक पञ्जाब में सिन्ध और झेलम के बीच मनिक्यल के स्तूप हैं। इस स्थान पर १५ वा २० स्तूप पाए गए थे और उनमें से कुछ स्तूपों को रणजीतसिंह के फरासीसी सेनापति वेन्टूर और कोर्ट साहबों ने सन् १८३० ई० में पहिले पहल खोला था। इनमें से प्रधान स्तूप का गुम्बज ठीक गोलार्ध है जिस का व्यास १२७ फीट है और इस कारण उसका घेरा लगभग ४०० फीट हुआ।

बौद्ध काल की सब उत्तम इमारतों के काम स्तूपों के चारों ओर के जँगले और फाटक हैं। सब से पुराने जंगले बुद्धगया और भरहुत के हैं। डाक्टर फर्ग्यूसन साहब बुद्ध गया के

जँगलों का समय २५० ई० पू० और भरहुत के जँगलों का समय २०० ई० पू० कहते हैं। बुद्धगया के जँगले १३१ फीट लम्बे और ९८ फीट चौड़े समकोण चतुर्भुज आकार के हैं और उसके खम्भे ५ फीट ११ इंच ऊंचे हैं।

भरहुत इलाहाबाद और जबलपुर के बीच में है। यहां का स्तूप अब बिलकुल नहीं रहा है, वह गांव के बनाने के काम में लाया गया परन्तु उसके जँगलों का लगभग आधा भाग अब तक है। वह पहिले ८८ फीट के व्यास का अर्थात् लगभग २७५ फीट लम्बा था। उसके चार द्वार थे जिन पर साढ़े चार फीट ऊँची मूर्तियां थीं। जेनरल कनिंगहाम साहब के मरम्मत के काम से जान पड़ता है कि पूरब के फाटक के खम्भे २२ फीट ६ इञ्च ऊँचे थे। धरनों पर मनुष्यों की कोई मूर्ति नहीं थी। नीचे की धरन [illegible] की धरन पर शेरों की, और [illegible] घड़ियालों की। जँगला ९ फीट ऊँचा था और उसके भीतर की ओर लगातार पत्थर की मूर्तियां खुदी थीं जो एक दूसरे से एक सुन्दर बेल के द्वारा जुदी की गई थीं। इनमें से लगभग १०० मूर्तियां पाई गई हैं और उन सब में कथाओं के दृश्य हैं और प्रायः सबमें जो जातक दिखलाए गए हैं उनका नाम भी खुदा हुआ है। भारतवर्ष में केवल एक यही स्मारक है जिसमें कि इस प्रकार लेख खुदे हुए हैं और इसीलिये भरहुत के जँगले ऐसे बहुमूल्य समझे जाते हैं।

इन जँगलों से भारतवर्ष के पत्थर के काम की जो अवस्था प्रगट होती है उसके विषय में हम डाक्टर फरग्यूसन साहब की सम्मति उद्धृत करने के लिये क्षमा नहीं मांगेंगे—

"जब हम लोग हिन्दुओं के पत्थर के काम को पहिले पहल बुद्ध गया और भारहुत के जँगलों में २०० से लेकर २५० ई० पू० तक देखते हैं तो हम उसे पूर्णतया भारतवर्ष का पाते हैं जिसमें कि विदेशियों के प्रभाव का कोई चिन्ह नहीं है। परन्तु उनसे वे भाव प्रगट होते हैं और उनकी कथा इस स्पष्ट रूप से विदित होती है जिसकी समानता कम से कम भारतवर्ष में कभी नहीं हुई। उसमें कुछ जन्तु यथा हाथी, हिरन, और बन्दर ऐसे बनाए हुए हैं जैसे कि संसार के किसी देश में बने हुए नहीं मिलते, और ऐसे ही कुछ वृक्ष भी बनाए गए हैं और उनमें नकासी का काम इतनी उत्तमता और शुद्धता के साथ बना हुआ है कि वह बहुत प्रशंसनीय हैं। मनुष्यों की मूर्तियां भी यद्यपि वे हम लोगों की आज कल की सुन्दरता से बहुत भिन्न हैं परन्तु बड़ी स्वाभाविक हैं और जहां पर कई मूर्तियों का समूह है वहां पर उनका भाव अद्भुत सरलता के साथ प्रगट किया गया है। रैल्फ की नाईं एक सच्चे और कार्योपयोगी शिल्प की भांति कदाचित इससे बढ़ कर और कोई काम नहीं पाया गया।"

भूपाल के राज्य में सांची के बड़े स्तूप के चारों ओरका जँगला गोलाकार है। उसका व्यास १४० फीट है और उसके अठ पहल खम्भे ८ फीट ऊँचे एक दूसरे से दो दो फीट की दूरी पर हैं। वे सिरे पर तथा बीच से भी दो फीट ३ इञ्च मोटी धरनों से जुटे हुए हैं। परन्तु यह तो साधारण सजावट हुई और दूसरे स्थानों में जँगलों के फूल पत्ती का काम बढ़ता गया है यहां तक कि फूल पत्ती और बेलबूटे और मूर्तियां इतनी आम और इतनी अधिक हो गई हैं कि उनसे खम्भे और धरन बिलकुल ढंक गए हैं और उनका मूल ढांचा बिलकुल बदल गया है।

सांची का बड़ा स्तूप जिसके विषय में हम पहले लिख चुके हैं सम्भवतः अशोक के समय में बना था। उसके प्रत्येक जँगले पर जो लेख खुदा है उससे विदित होता है कि वह भिन्न भिन्न मनुष्यों का दिया हुआ है। इसके उपरान्त चारों फाटक सम्भवतः इसके पीछे बनवाए गए थे। डाक्टर फरग्यूसन साहेब उनका इस भांति वर्णन करते हैं—

"ये चरों फाटक वा तोरन भीतर और बाहर दोनों ओर अर्थात् जहां धरनों में जोड़े जाने के कारण उनका जितना भाग ढँक गया है उतने भाग को छोड़ कर और सर्वत्र सबसे उत्तम पत्थर के काम से ढँके हुए थे। बहुधा इनमें बुद्ध के जीवन के दृश्य खुदे हुए हैं। इन दृश्यों के सिवाय उनमें उन जातकों के दृश्य हैं जिनमें कहा गया है कि शाक्य मुनि ने ५०० जन्मों में अवतार लिया और उसके उपरान्त वे इतने पवित्र हुए कि पूर्ण बुद्ध हो गए। इनमें से एक अर्थात् वेसन्तर वा "दान देने का" जातक उत्तरी फाटक के सब से नीचे की पूरी धरन पर है और उसमें उस अद्भुत कथा की सब बातें ठीक उसी प्रकार से दिखलाई गई हैं जैसी कि वे लंका की पुस्तकों में आज तक मिलती हैं... .....अन्य मूर्तियों में युद्ध, घेरा डालने, तथा अन्त में विजय पाने के दृश्य दिखलाए गए हैं। परन्तु जहां तक विदित होता है ये युद्ध स्मारक स्थित रखने के लिये वा किसी धर्म्म सम्बन्धी कार्य्य के लिए किए गए थे। अन्य मूर्तियों में मनुष्य और स्त्रियां खाते पीते तथा प्यार करते हुए दिखलाए गए हैं। फाटकों की संगतराशी से भारतवर्ष में ईसा की पहिली शताब्दी के बौद्धों के धर्म्म ग्रन्थ के पूर्ण चिन्ह हैं।"

सांची के जँगलों का समय बुद्धगया और भरहुत के जँगलों से तीन शताब्दी पीछे का कहा जाता है और अमरावती के

जँगले सांची के जँगलों से भी तीन शताब्दी पीछे के हैं। अमरावती के जँगले का समय ईसा की चौथी या पांचवीं शताब्दी कहा जाता है।

अमरावती कृष्णानदी के मुहाने के निकट उसके दक्षिणी किनारे पर है और यह बहुत समय तक दक्षिणी भारतवर्ष के अन्ध्रराजाओं की राजधानी थी। अमरावती का जँगला फूल पत्ती और मूर्तियों से भरा हुआ है। बड़े जँगले का व्यास १९५ फीट और भीतरवाले जंगले का व्यास १६५ फीट है और इन दोनों के बीच यात्रा का मार्ग था। बड़ा जँगला बाहर से १४ फीट और भीतर से १२ फीट और छोटा जँगला ठोस और ६ फीट ऊँचा था। बड़े जँगले की दीवार में जानवरों और लड़कों की मूर्तियां खुदी थीं और खम्भे अन्य खम्भों की नाईं अठपहल थे और उन पर फूल खुदे थे। बड़े जँगले में बाहर की अपेक्षा भीतर की ओर बहुत उत्तम काम था और जँगले के ऊपरी भाग में लगातार ६०० फीट की लम्बाई में मूर्तियां खुदी हुई थीं। बड़े जँगले की अपेक्षा भीतरी जँगले में और भी उत्तम काम था और उसमें बुद्ध के जीवन चरित्र के अथवा कहानियों के दृश्य भी उत्तमता के साथ खुदे हुए थे।"

डाक्टर फरग्यूसन साहब ने अपनी पुस्तक में दो चित्र दिए हैं एक बड़े जँगले का और दूसरा भीतरी जँगले का। ये दोनों बड़े मनोरञ्जक हैं। पहिले में एक राजा अपने सिंहासन पर बैठा हुआ किसी राजदूत से मिल रहा है और सामने उसकी सेना दीवालों की रक्षा कर रही है। उसके नीचे पैदल सिपाही घुड़सवार और हाथी युद्ध की सजावट के साथ निकल रहे हैं और उन में से एक शत्रु मेल के लिये बात चीत कर रहा है। दूसरे अर्थात् भीतरी जँगले के चित्र में पूजा की तीन

वस्तुएँ हैं अर्थात् एक तो स्तूप तथा उसके अँगले, दूसरे चक्र अर्थात् धर्म्म का पहिया और तीसरे एक जनसमुदाय जो बो पवित्र वृक्ष का पूजा कर रहा है ।

अब हम चैत्यों अर्थात् सभा भवन वा मन्दिरों के विषय में लिखेंगे । इन बौद्ध मन्दिरों में विशेषता यह है कि वे उठाए नहीं जाते वरन् ऊँची ऊँची चट्टानों में काट कर बनाए जाते हैं । इस समय बीस वा तीस ऐसे मन्दिर हम लोगों को विदित हैं और एक के सिवाय और सब चट्टानों के भीतर उनको काट कर बनाए गये हैं । यूरप के गिर्जों और हिन्दुओं के मन्दिरों के बाहरी रूप बहुत ही उत्तम और मनोहर होते हैं परन्तु चट्टानों में खोद कर बनाए हुए बौद्ध मन्दिरों के बाहर की ओर केवल मुंह को छोड़ कर जिस पर कि बहुधा काम किया हुआ रहता है और कोई बात देखने योग्य नहीं होती ।

दस में से नौ चैत्य जो कि अब तक पाए जाते हैं बम्बई प्रान्त में हैं और इसका कारण यह है कि भारतवर्ष के इसी प्रान्त में बहुत सी गुफाएँ हैं और उनकी चट्टानें काटी जाने के लिये बहुत ही उत्तम हैं ।

बिहार में एक गुफा है और यह विश्वास किया जाता है कि यही राजगृह की वह सतपर्नि गुफा है जिसमें वा जिसके सामने गौतम की मृत्यु के उपरान्त ही उसके नियमोंको निश्चित करने के लिये बौद्धों की पहिली सभा हुई थी । यह एक स्वाभाविक गुफा है जिसमें कि कारीगरी के द्वारा कुछ थोड़ी सी उन्नति कर दी गई है और हेनत्साङ्ग ने मगध में रहने के समय उसे देखा था ।

गया के १६ मील उत्तर अनेक गुफाओं का एक मनोरञ्जक समूह है और उनमें से सबसे मनोरञ्जक गुफा लोमश ऋषि

की गुफा के नाम से प्रसिद्ध है। उसकी छत नोकीली वृत्ताकार है और उसके मुंह पर सादे पत्थर का काम है। भीतर ३३ फीट लम्बा और १९ फीट चौड़ा एक दालान है जिसके आगे एक वृत्ताकार कोठरी है। ये सब गुफायें ईसा के पहिले तीसरी शताब्दी की खुदी हुई कही जाती हैं।

पश्चिमी घाट में पांच या छः चैत्य की गुफाएँ हैं और वे सब ईसा के पहिले की खुदी हुई कही जा सकती हैं और उनमें से भजकी गुफा सब से प्राचीन कही जाती है। बौद्ध जँगलों की नाईं उनके चैत्यों में भी पत्थर के काम को हम धीरे धीरे काठ के कामों से निकलते हुए पाते हैं। भज की गुफा के खम्भे भीतर की ओर बहुत ही झुके हुए हैं ठीक उसी भांति जैसे कि काठ के खम्भे किसी इमारत में थांड़ देने के लिये तीखे खड़े रहते हैं। गुफाओं की धरनें लकड़ी की हैं जिनमें से बहुत सी आज तक वर्तमान हैं। इस गुफा का समय ईसा के पहिले तीसरी शताब्दी कहा जाता है।

गुफाओं का एक दूसरा समूह वेदसोर में है जिसमें कि बहुत अधिक उन्नति दिखलाई पड़ती है। उनके खम्भे अधिक सीधे हैं, यद्यपि वे भी भीतर की ओर कुछ झुके हुए हैं। उसके द्वार पर बौध जँगलों का सा काम है। उसका ढांचा स्वयं जँगलों ही से लिया गया है परन्तु यहां वह केवल शोभा की भांति बनाया गया है। इन गुफाओं का समय दूसरी शताब्दी का प्रथमार्ध भाग कहा जाता है।

इसके उपरान्त नासिक में एक गुफा है। उसके खम्भे इतने सीधे हैं कि उनका झुकाव बहुत कठिनता से जान पड़ता है और उसके द्वार पर यद्यपि उन्हीं जँगलों का सा काम है

परन्तु उनमें बहुत ही उत्तमता देख पड़ती है। इस गुफा का समय दूसरी शताब्दी का द्वितीयार्ध कहा जाता है।

और जब हम अन्त में कार्ली की गुफा को देखते हैं जो कि पूना और बम्बई के बीच की सड़क पर है तो हम इस प्रकार की इमारतों को अपनी पूर्ण अवस्था में पहुंचा हुआ पाते हैं। इसके खम्भे बिलकुल सीधे हैं, इसके पर्दे पर पत्थर का काम खुदा हुआ है और इसके भीतर और बाहर की बनावट का ढङ्ग निर्मल और शुद्ध है। यह गुफा ईसा के उपरान्त पहिली शताब्दी की खुदी हुई कही जाती है और भारतवर्ष में अब तक जितने चैत्य मिले हैं उनमें यह सब से बड़ो और सबसे पूर्ण है और इसके उपरान्त की शताब्दियों में इसकी समता की इस ढङ्ग की इमारत नहीं बनी।

निम्न लिखित वृत्तान्त हमारे पाठकों को मनोरञ्जक होगा--

"यह इमारत ईसाइयों के प्राचीन गिर्जो से बहुत कुछ मिलती है। उसमें गिर्जों की नाईं एक मध्य भाग है और इसके दोनो ओर दालानें हैं और यह अर्ध गुम्बजाकार होकर समाप्त होती है जिसके चारो ओर दालान हैं। इसके भीतर की लम्बाई द्वार से लेकर पीछे की दीवार तक १२६ फीट है और चौड़ाई ४५ फीट ७ इञ्च है। परन्तु इसके बगल की दालानें ईसाई गिर्जों से बहुत सकरी हैं। इनमें से बीच की दालान २५ फीट ७ इञ्च चौड़ी है और अन्य सब खम्भों की मोटाई लेकर केवल १० फीट चौड़ी हैं। प्रत्येक ओर १५ खम्भे दालानों को मध्यभाग से जुदा करते हैं, प्रत्येक खम्भे की नीचे की कुर्सी ऊँची है, खम्भा अठपहला है और उसके ऊपर के ढांसे में बहुत अच्छी नकाशी है, ढांसे के ऊपर दो हाथी घुटनों के बल बैठे हुए हैं और उनके ऊपर दो मूर्तियां

हैं जो कि प्रायः एक मनुष्य और एक स्त्री की है और कहीं कहीं पर दोनों स्त्रियां ही हैं । और यह सब ऐसे उत्तम खुदे हुए हैं कि वैसे साधारणतः देखने में नहीं आते । पीछे के ७ खम्भे केवल सादे अठपहल हैं जिसके नीचे न तो कुर्सी है और न ऊपर दासा.........इसके ऊपर छत है जो कि अर्ध-वृत्ताकार है परन्तु दोनों ओर वह कुछ लम्बी है जिससे कि अर्ध वृत्त की ऊंचाई उसके व्यासार्ध से अधिक हो गई है......

अर्ध गुम्बज के ठीक नीचे और लग भग उसी स्थान पर जहाँ कि ईसाई गिर्जों में वेदी रहती है, डगोवा स्थित है ।

" भीतर के भाग का हम पूरी तरह से विचार कर सकते हैं और वह निस्सन्देह ऐसा गम्भीर और उत्तम है जैसा कि कहीं भी होना सम्भव है । और उसके प्रकाश का ढंग बहुत ही पूर्ण है-एक पूरा प्रकाश ऊपर के एक छेद से आकर ठीक वेदी अर्थात् इस इमारत की मुख्य वस्तु पर पड़ता है और शेष भाग सब अंधकार में रहता है । यह अंधकार तीनों भागों को औरतीनों दालानों को जुदा करने वाले मोटे मोटे घने खम्भों से और भी अधिक हो जाता है ।"—फर्ग्युसन

अजण्टा में चार चैत्य हैं जिनका समय सम्भवतः ईसा की पहिली शताब्दी से लेकर छठी शताब्दी तक है । पीछे के समय के चैत्यों में बुद्धकी मूर्तियां हैं और इनमें से सब से अन्तिम समयके बने हुए चैत्य से बौद्ध धर्म्म का जो रूप प्रगट होता है वह छठी शताब्दी तथा उसके पीछे के हिन्दू धर्म्म से बहुत कुछ मिलता है ।

एलोरा की विश्वकर्म्मा गुफा का चैत्य बौद्ध काल के अन्तिम भाग का बना हुआ है । उसके कमरे की लम्बाई ८५ फीट और चौड़ाई ४३ फीट है और छत में सब बेल और

नक्काशियां पत्थर में खुदी हुई हैं यद्यपि उनमें भी लकड़ी की नक्काशियों की नकल की गई है। यहां पर हमें नाल के आकार का द्वार नहीं मिलता जो कि इसके पहिले के सब चैत्यों में एक प्रधान बात है। इसका आगे का भाग किसी साधारण से दो खण्ड के गृह की नाईं जान पड़ता है और उसके बरामदे में बहुत उत्तम पत्थर की नक्काशी है।

बम्बई के बन्दरगाह में सालसेट टापू की कन्हेरी की गुफा प्रसिद्ध है। वह पांचवीं शताब्दी के आरम्भ में खुदवाई गई थी। वह कार्ली की गुफा की नकल है परन्तु वह उससे कहीं घट कर नीचे की श्रेणी की है।

अन्त में अब हम विहारों अर्थात् मठों का वर्णन करेंगे। बौद्ध विहारों में सब से प्रथम (पटना के दक्षिण) नालन्द का प्रसिद्ध विहार है जिसे हुएनत्साङ्ग ने सातवीं शताब्दी में देखा था। कई उत्तरोत्तर राजाओं ने काम बनवाया था और एक राजा ने सब विहारों को घेर कर एक ऊँची दीवार उठवाई थी जो कि १६०० फीट लम्बी और ४०० फीट चौड़ी थी और जिसके चिन्ह अब तक मिलते हैं। इस घेरे के बाहर स्तूप और गुम्बज बनवाए गए थे जिनमें से दस बाहर की जेनरेल कनिंगहाम साहब ने पहिचान की है।

परन्तु इस बड़े विहार की इमारत का ठीक तरह पर जीर्णोद्धार नहीं किया गया और न उनकी बनावट का ढङ्ग स्पष्ट किया गया है। यह सन्देह करने के कई कारण हैं कि इस इमारत की भूमि के ऊपर की बनावट काठ की थी और यदि यह ठीक है तो उसका कोई चिन्ह अब नहीं रहा है।

हमारे बहुत से पाठक जो कटक और भुवनेश्वर गए होंगे उन्होंने इन स्थानों में उदयगिरि और खण्डगिरि की पहाड़ी की दोनों गुफाएं, जो कटक से लगभग बीस मील दूर हैं, अवश्य देखी होंगी। हाथी गुम्फ के एक शिलालेख में लिखा है कि इस लेख को कलिङ्ग के राजा वेर ने खुदवाया था जिसने आस पास के राजाओं को दमन किया।

गणेश गुम्फ और राजरानी गुम्फ दोनों ही सन् ईसवी के पहिले के खुदे हुए हैं और उन दोनों में एक अद्भुत कथा खुदी हुई है। एक मनुष्य एक वृक्ष के नीचे सोया है और एक स्त्री, जो कि प्रत्यक्ष में उसकी पत्नी है, अपने प्रेमी का स्वागत करती है। इस पर युद्ध होता है और जीतने वाला स्त्री को अपनी गोद में ले भागता है।

इन सब से अधिक प्राचीन छोटी छोटी और सादी गुफाएं हैं जिनमें उदयगिरि की व्याघ्र गुफा सब से प्रसिद्ध है।

अब पश्चिमी भारतवर्ष में नासिक में तीन मुख्य मुख्य विहार हैं जो नहपान, गौतमी पुत्र और यदुयश्री के नाम से विख्यात हैं। इनमें से पहिली दोनों गुफाएं एक ही ढंग की हैं, उनके दालान ४० फीट लम्बे और उतने ही चौड़े हैं और उनके तीन ओर सन्यासियों के रहने के लिये १६ छोटी छोटी कोठरियां तथा चौथी ओर १६ खम्भों वाला एक बरामदा है। नहपान विहार में एक शिलालेख खुदा हुआ है जिससे विदित होता है कि इसको शाहवंश के सबसे प्रथम राजा नहपाल के दामाद ने बनवाया था और इसलिये इस विहार के बनने का समय लगभग १०० ईस्वी है। गौतमी पुत्र विहार इसके दो वा तीन शताब्दी उपरान्त का समझा जाता है। यदुयश्री विहार का दालान ६० फीट लम्बा और ४० से ४५ फीट तक चौड़ा

है। और उसमें सन्यासियों के लिये २१ कोठरियां हैं। उसमें एक देव स्थान भी है जिसमें खुदाई के बहुत उत्तम काम किए हुए दो खम्भे तथा बुद्ध की एक बहुत बड़ी मूर्ति है जिसकी सेवा में बहुत से लोगों की मूर्ति बनी है। एक शिलालेख से इस विहार का समय पांचवीं शताब्दी विदित होता है।

कदाचित भारतवर्ष में सब से अधिक मनोरञ्जक विहार अजंटा के १६ वें और १७ वें विहार हैं। वे बौद्ध विहारों के बड़े सुन्दर नमूने हैं और वे बड़े ही काम के हैं क्योंकि उनमें अब तक भी चित्र ऐसी स्पष्टता के साथ वर्तमान हैं कि जैसे और किसी विहार में नहीं पाए जाते। उनका समय निश्चित हो गया है। वे पांचवीं शताब्दी के आरम्भ में बनवाए गए थे, जब कि भारतवर्ष में गुप्तवंशी सम्राटों का राज्य था।

नं० १६ का विहार ६५ फीट लम्बा और उतना ही चौड़ा है और उसमें २० खम्भे हैं। उसके दोनों ओर सन्यासियों के रहने के लिये १६ कोठरियां, बीच में एक बड़ा दालान, आगे की ओर एक बरामदा और पीछे की ओर देव स्थान है। इसकी दीवारें चित्रों से भरी हुई हैं जिनमें बुद्ध के जीवन वा मुनियों की कथाओं के दृश्य हैं और छत तथा खम्भे में बेल बूटों आदि के काम हैं और इन सब बातों से उसकी एक अद्भुत शोभा हो जाती है। इन चित्रों के जो नमूने प्रकाशित हुए हैं उनको देखने से चित्रकारी किसी प्रकार हलकी नहीं जान पड़ती है। मूर्तियां स्वाभाविक और सुन्दर हैं, मनुष्यों के मुख मनोहर और भाव प्रकट करने वाले हैं और वे उन विचारों को प्रगट करते हैं जिनके लिये कि वे बनाए गए हैं, और स्त्रियों की मूर्तियां लचीली, हलकी और उत्तम हैं और उनमें वह मधुरता और शोभा है जिससे कि वे विशेषतः भारतवर्ष की जान पड़ती हैं। सजावटें ठीक और ठीक तथा अद्भुत

शोभा देने वाली हैं । यह आशा की जाती है कि इस अद्भुत चित्रकारी का एक पूर्ण संग्रह अब भी प्रकाशित किया जायगा जिससे कि प्राचीन भारतवर्ष की चित्रकारी की विद्या का वृत्तान्त प्रगट हो और यह ग्रन्थ भारतवर्ष के शिल्प का इतिहास जानने वालों के लिये उतना ही अमूल्य होगा जितना कि यूरोप के प्राचीन शिल्प का इतिहास जानने वालों के लिये पोम्पिआई के वे चित्र हैं जो कि नेपिल्स के अजायब घर में रक्षित हैं । डाक्टर फर्ग्युसन साहब को यह भय है कि अजण्टा की चित्रकारी की नकल लेने के लिए उन के रङ्ग को चटकीला करने के जो उपाय किए गए हैं उनसे तथा बृटिश यात्रियों की नाशकारी प्रकृति के कारण ये अमूल्य भण्डार नष्ट हो गए हैं ।

१७ वें नम्बर का अजण्टा विहार भी सोलहवें नम्बर के विहार के सदृश है और वह राशि चक्र की गुफा के नाम से प्रसिद्ध है । क्योंकि उसमें एक बौद्ध चक्र है जो कि भूल से राशिचक्र समझा गया था ।

मण्डु से ३० मील पश्चिम बाघ नामी स्थान में ८ या ९ विहार हैं । यहां के बड़े विहार में ९६ फीट लम्बा चौड़ा एक दालान है और उससे सटी हुई एक शाला है जो कि ९४ फीट लम्बी और ४४ फीट चौड़ी है और दालान तथा शाला के आगे २२० फीट लम्बा बरामदा है । दालान में २८ खम्भे, शाला में १६ खम्भे और बरामदे में एक पंक्ति में २० खम्भे सुशोभित हैं । किसी समय में बरामदे की पीछे की दीवार चित्रकारी से सुशोभित थी जो कि सुन्दरता में अजंटा की चित्रकारी के बराबर थी । इसमें मुख्य विषय घोड़ों और हाथियों पर की यात्रा है । स्त्रियां मनुष्यों से अधिक हैं और उनमें नाच और प्रेम भाव विशेष करके दिखलाया गया है ।

एलोरा में विश्वकर्म्मा चैत्य के विषय में हम पहिले लिख चुके हैं । इस चैत्य से लगे हुए बहुत से विहार हैं । सब से बड़ा विहार ११० फीट लम्बा और ७० फीट चौड़ा है और यह तथा अन्य छोटे विहार सम्भवतः उसी शताब्दी के हैं जब का कि यह चैत्य है ।

यहां पर तीन मन्दिर हैं जिससे यह बात अद्भुत रीति से प्रगट होती है कि बौद्ध गुफाएं धीरे धीरे हिन्दुओं के चाल जैसी हो गईं । पहिला मन्दिर दोतल नामी दो खण्ड का एक बौद्ध विहार है जिसकी बनावट सब प्रकार से बौद्ध ढङ्ग की है । दूसरा मन्दिर तीन तल है जो कि दोतल के सदृश है उसके पत्थर के काम भी बौद्ध ढङ्ग के हैं परन्तु वे सरलता से इतनी दूर हैं कि ब्राह्मणों का उसे अधिकार में कर लेना न्याय्य है । तीसरा मन्दिर दश अवतारका है जो कि बनावट में पहिले दोनों मन्दिरों के सदृश हैं परन्तु उसके पत्थर के काम बिलकुल हिन्दुओं के ढङ्ग के हैं । इसके उपरान्त जब हिन्दु धर्म्म ने बौद्ध धर्म्म को पूरी तरह से दबा लिया तो दक्षिणी भारतवर्ष के हिन्दुओं ने इस स्थान पर ईसा की आठवीं या नौवीं शताब्दी में कैलाश का प्रसिद्ध मन्दिर खुदवाया जिसने कि एलोरा को भारतवर्ष का एक अद्भुत स्थान बना दिया है । परन्तु इस मन्दिर तथा हिन्दुओं की अन्य इमारतों के विषय में हम आगे चल कर पौराणिक काल में वर्णन करेंगे । यहां पर केवल इतना ही लिखना आवश्यक होगा कि बौद्धों और हिन्दुओं की इमारतों में मुख्य भेद यह है कि बौद्धों के चैत्य और विहार पर्वतों में गुफा खोदकर बनाए गए हैं परन्तु हिन्दू लोग जब वे चट्टानों या पहाड़ियों पर भी इमारत बनाते थे तो वे जिस स्थान पर इमारत बनवाना चाहते थे उसके चारों ओर की

चट्टानों को काट डालते थे और बीच की बची हुई जगह के भीतर से काट कर उसे मकान की नाईं बनाते थे जिसमें यह मकान उठाई हुई इमारत की नाईं अपने चारों ओर की चट्टानों से ऊपर उठा हुआ रहता था। एलोरा का कैलाश ऐसा ही है।

हमें गान्धार के विहारों का वृत्तान्त देकर इस अध्याय को बढ़ाना नहीं है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि वहां पर यूनानियों के प्रभाव से इमारत बनाने के ढङ्ग में बहुत कुछ परिवर्तन हुआ और पञ्जाब में बहुत से खम्भों के सिरे और मूर्तियां मिली हैं जो कि स्पष्ट यूनानियों के ढङ्ग की हैं। और न यहां लङ्का की इमारतों का ही वृत्तान्त देना सम्भव है। इस टापू में और विशेषतः अनुराधपुर के निकट, जो कि १० शताब्दी तक लङ्का की राजधानी रही है, प्राचीन स्तूपों और इमारतों के असंख्य खंड़हर पाए जाते हैं। लङ्का में दो सब से बड़े स्तूप ही हैं एक अभय गिरि पर जिसका घेरा ११०० फीट और ऊंचाई २४४ फीट है और दूसरा जेतवन में जो कि उससे कुछ फीट ऊंचा है। इनमें से पहिला ईसा के ८८ वर्ष पहिले बना था और दूसरा सन् २७५ ईस्वी में।

ऊपर के संक्षिप्त वर्णन से हमारे पाठकों को विदित होगा कि इमारत बनवाने तथा पत्थर के काम में भारतवर्ष ने ईसा के पहिले और उसके तत्काल उपरान्त पूर्ण उत्तमता प्राप्त की थी। इस विषय में पहिले उद्योगों के लिए उड़ीसा और बिहार की बेडौल गुफाओं को देखना चाहिए जिनके आगे के भाग में कहीं कहीं पर जानवरों की बेडौल मूरतों का सङ्गतराशी का काम है। उदाहरण के लिये उड़ीसा की व्याघ्र गुफा है और हमें इस श्रेणी की गुफाओं का समय बौद्ध धर्म के पहिले पहल

प्रचार होने का समय अर्थात् ईसा के पहिले चौथी शताब्दी समझना चाहिए। ईसा के पहिले तीसरी शताब्दी में इस विद्या की बड़ी उन्नति की गई और कदाचित् ईसा के पहिले तीसरी शताब्दी से लेकर उसके उपरान्त पहिली शताब्दी के भीतर इमारत और सङ्गतराशी के सब से उत्तम काम बने हैं। भरहुत और साँची के सर्वोत्तम नक्काशी के पत्थर के जङ्गलों का समय २०० ई० पू० और १०० ईस्वी है और चैत्यों में जो सब से उत्तम कार्ली का चैत्य है वह भी ईसा के उपरान्त पहिली शताब्दी का है। इसके उपरान्त की तीन वा चार शताब्दियों में भी यह विद्या ऐसी ही चढ़ी बढ़ी रही परन्तु उसमें कोई उन्नति का होना नहीं कहा जा सकता। क्योंकि बेल बूटों के बनाने की ओर प्रवृत्ति का होना सच्ची उन्नति कही जा सकती है वा नहीं इसमें सन्देह है। अजण्टा के विहार और अमरावती के जङ्गलों में जो कि इसी के चौथी वा पांचवीं शताब्दी में बनाए गए थे, कारीगरी की वही उच्च अवस्था पाई जाती है जिसे कि भारतवर्ष ने तीन वा चार शताब्दी पहिले प्राप्त किया था। चित्रकारी भी जिसके आरम्भ के नमूने हमें नहीं मिलते, पांचवीं शताब्दी में पूर्ण उत्तमता को प्राप्त हो गई थी।

अतः हिन्दुओं ने बौद्धों के इमारत बनाने और संगतराशी के काम को ग्रहण किया। छठीं और सातवीं शताब्दी के प्राचीन हिन्दू मन्दिर जो उड़ीसा में अथवा अन्यत्र हैं उनमें पत्थर का काम वैसा ही उत्तम और प्रशंसनीय है जैसा कि बौद्धों के जँगलों का, परन्तु इसके उपरान्त के समय में इस विद्या की अवनति हुई।

हिन्दुओं के उत्तर काल के मन्दिरों में शिल्प के वे उच्च गुण नहीं हैं और उनमें बहुधा ऐसे उपायों का आश्रय लिया गया है-यथा मुख्य मुख्य मूर्त्तियों को अन्य मूर्त्तियों के दूने आकार का बनाना, और देवताओं में मनुष्यों से अधिक सिर और हाथ को दिखला कर भेद प्रगट करना"।

अध्याय ८

जाति ।

हिन्दुओं के इमारत बनाने की विद्या और पत्थर के काम के उपरान्त अब हम बौद्ध समय में उनके सामाजिक आचरण तथा अवस्था का वर्णन करेंगे ।

हम पहिले कह चुके हैं कि भारतवर्ष में कई शताब्दियों तक बौद्ध और हिन्दू धर्म दोनों ही साथ साथ प्रचलित रहे। कट्टर हिन्दू लोग विशेष कर उच्च जाति के लोग वेद के धर्म और वेद के यज्ञों का अवलम्बन करते रहे। दूसरी ओर बौद्ध सन्यासियों और मठों की संख्या बढ़ती जाती थी और साधारण लोगों में से झुंड के झुंड मनुष्य बौद्ध धर्म को ग्रहण करते और मूर्तियों की पूजा करते थे। इन दोनों धर्म्मों में प्रत्यक्ष में परस्पर कोई द्वेष नहीं था और उस अवस्था को छोड़ कर जब कि कोई अज्ञानी और अत्याचारी राजा अपने राज्य काल में दुःख देता था, और किसी अवस्था में हिन्दुओं और बौद्धों में द्वेष का कोई भाव नहीं था और वे भारतवर्ष में बहुत शताब्दी तक मित्रता के साथ रहते थे और अपने अपने धर्म्म के अनुसार चलते थे।

बौद्धों की धर्म्म पुस्तकों से हमने इस पुस्तक के दूसरे भाग में जो अनेक वाक्य उद्धृत किए हैं उनसे बौद्धों के जीवन और चाल व्यवहार का बहुत कुछ वृत्तान्त विदित होता है। इस काल में हिन्दुओं के जीवन और चाल व्यवहार को जानने के लिये हमें मनुस्मृति का आश्रय लेना चाहिए जो कि कई बातों में इस काल का एक बड़ा अद्भुत ग्रन्थ है।

हम पहिले लिख चुके हैं कि भारतवर्ष में मनु की स्मृति पहिले सूत्र के रूप में प्रचलित थी और दार्शनिक काल में दूसरे सूत्रकार लोग इसे बड़े सत्कार की दृष्टि से देखते थे। परन्तु वह प्राचीन स्मृति हम लोगों को अब प्राप्त नहीं है और अब जो मनुस्मृति वर्तमान है वह बौद्ध काल में पूर्णतया दोहरा करके पद्य में बनाई गई थी। अतएव उससे बौद्ध काल के हिन्दुओं की रीति और चाल व्यवहार विदित होती है और इस प्रकार वह इस के पहिले के दार्शनिक काल के सूत्र ग्रन्थों और इसके उपरान्त के पौराणिक काल के धर्म शास्त्रों की मध्यवर्ती कड़ी है।

पहिले के समय के सूत्र किसी न किसी वैदिक शाखा से सम्बन्ध रखते हैं। परन्तु मनु अपना सम्बन्ध किसी विशेष शाखा वा सम्प्रदाय से नहीं रखता वरन् उसने आर्य्य हिन्दू मात्र के लिये नियम बनाए हैं। इस बात में दार्शनिक काल के सूत्र ग्रन्थों से मनु का भेद है।

इसके सिवाय पौराणिक काल के धर्म शास्त्रों से मनु का और भी अधिक भेद है। इन धर्म सूत्रों में पौराणिक वा आधुनिक हिन्दू धर्म को माना है और उनमें हिन्दुओं के तीन देवताओं तथा मूर्ति पूजा में विश्वास प्रगट किया है। परन्तु मनु इन आधुनिक बातों को नहीं मानते। वे वैदिक धर्म और वैदिक यज्ञों को मानते हैं और उत्तर काल के हिन्दुओं की त्रिमूर्ति को नहीं मानते और मूर्तिपूजा को पाप समझते हैं। इस प्रकार मनु की अवस्था अनोखी और अद्वितीय है, और उससे हिन्दुओं की वह परिवर्तित अवस्था प्रगट होती है जिसमें कि वे लोग बौद्ध काल में आधुनिक वा पौराणिक धर्म को पूरी तरह से ग्रहण करने के पहिले थे। इसी बात में मनु की स्मृति अमूल्य है और इस स्मृति के आधुनिक रूप में बनने

का समय डाक्टर बुहलर तथा अन्य विद्वान लोग ईसा के पहिले या उपरान्त पहिली या दूसरी शताब्दी में स्थिर करते हैं।

हम पहिले लिख चुके हैं कि प्राचीन सूत्रकार मिश्र जातियों की उत्पत्ति का कारण चारों मूल जाति से भिन्न भिन्न जाति के स्त्री और पुरुष के संयोग बतलाते हैं, और दुर्भाग्य-वश मनु ने भी इसी लड़कपन की कथाको माना है। हम नीचे मनु की मिश्रित जातियों की सूची या यों कहिए कि मनुष्यों की जाति की उत्पत्ति के विषय में मनु का सिद्धान्त देते हैं। प्रथम श्रेणी की तीन जातियों से नीचे की तीन जाति की स्त्री से जो पुत्र उत्पन्न होता था वह अपने पिता की जाति का होता था, नई जाति का नहीं।

पिता	माता	जाति
ब्राह्मण	वैश्य	अम्बष्ठ
,,	शूद्र	निषाद
क्षत्रिय	,,	उग्र
,,	ब्राह्मण	सूत
वैश्य	,,	वैदेह
,,	क्षत्रिय	मागध
शूद्र	वैश्य	आयोगव
,,	क्षत्रिय	क्षत्ती
,,	ब्राह्मण	चाण्डाल
ब्राह्मण	उग्र	आवृत्त
,,	अम्बष्ठ	आभीर
,,	अयोगव	धिग्वन
निषाद	शूद्र	पुक्कस
शूद्र	निषाद	कुक्कुटक
क्षत्ती	उग्र	श्वपाक
वैदेहक	अम्बष्ठ	वेण

पिता	माता	जाति
प्रथम तीनों जातियां	अपनी ही जाति की स्त्रियों से जो अपने पवित्र कर्मों को न करती हों।	व्रात्य
ब्राह्मण व्रात्यों से	....	भिज्जकन्टक अवन्त्य वातधान पुष्पध सखै
क्षत्री व्रात्यों से	....	झल्ल मल्ल लिच्छिवि नट करन खस द्रविड़
वैश्य व्रात्यों से	....	सुधन्वन अचार्य्य कारुश विजन्मन मैत्र सात्वत
दस्यु	अयोगव	सैरिन्ध्र
वैदेह	,,	मैत्रेयक

पिता	माता	जाति
निषाद	,,	मार्गव वा दास वा कैवर्त
,,	वैदेह	कारावर
वैदेहिक	कारावर	अन्ध्र
,,	निषाद	मेद
चण्डाल	वैदेह	पाण्डुसोपाक
निषाद	,,	अहिन्दिक
चण्डाल	पुक्कस	सोपाक
,,	निषाद	अन्त्यावसायिन

और अनार्य्य जातियों की इस सूची को काफी न समझ कर इस बड़े स्मृतिकार ने इस नियम में पृथ्वी की सब जातियों को सम्मिलित करने का उद्योग किया है! पौन्ड्रक (उत्तरी बङ्गाल के लोग), उड्र (उड़िया लोग), द्रविड़ (दक्षिणी भारतवर्ष के लोग), कम्बोज (काबुल के लोग), यवन (बेक्ट्रिया के यूनानी लोग), शक (तूरानीजाति के आक्रमण करनेवाले), पारद, पहलव (फारस के लोग), चीन (चीन के लोग), किरात (पहाड़ी लोग), और दरद और खस लोग पहिले के क्षत्रिय कहे गए हैं परन्तु वे पवित्र कर्म्मों को न करने और ब्राह्मणों की सम्मति धीरे धीरे इस संसार में न लेने के कारण तथा धार्मिक कर्म्मों को न करने के कारण शूद्रों की अवस्था को प्राप्त हुए हैं। (१०, ४३, और ४४)।

मिश्रित जातियों की उपरोक्त सूची को ध्यान पूर्वक देखने से हम लोगों को विदित होगा कि उनमें वे सब अनादि आर्य्यवासी तथा विदेशी सम्मिलित हैं जो कि मनु के समय में हिन्दुओं को विदित थे, परन्तु व्यवसाय करने से जो जातियां बनी हैं वे उनमें सम्मिलित नहीं हैं और वे जातियां आज कल की बनी हैं। उनमें हमको कायस्थों, वैद्यों, सोनारों

लोहारों, वणिकों, कुम्हारों, जुलाहों तथा अन्य कारीगरों की जातियों के नाम नहीं मिलते जो कि आज कल पाए जाते हैं। इन जातियों की उत्पत्ति कैसे हुई और उनकी उत्पत्ति कब हुई और आज कल जो सैकड़ों नई जातियां पाई जाती हैं उनकी उत्पत्ति का कारण क्या हम मनु की लिखी हुई भिन्न भिन्न मिश्रित जातियों के मनुष्यों और स्त्रियों के सम्मेल से समझें।

फिर, जब हम आज कल की हिन्दू जातियों को देखते हैं तो हमें बहुत से प्रान्तों में उस प्राचीन वैश्य जाति का नाम भी नहीं मिलता जिस जाति में कि मनु के समय के अधिकांश लोग सम्मिलित थे। वे वैश्य क्या हुए? भारतवर्ष के बहुत से प्रान्तों से उनका कब और कैसे लोप हो गया? और क्या हम उपरोक्त कथा के अनुकूल यह विश्वास करें कि वैश्य लोग दूसरी जाति की स्त्रियों से ही विवाह करने और अपनी जाति की स्त्रियों से ही विवाह न करने के इतने आदी थे कि वे निरन्तर अन्य जातियों से विवाह करते रहे, यहां तक कि उनकी जाति ही न रह गई?

भारतवर्ष के इतिहास जानने वालों को ऐसी बच्चों की सी कहानियों को मान लेने की आवश्यकता न पड़ेगी। बुद्धि उन्हें बतलाएगी कि मनु के समय के वैश्य लोग अपने अपने व्यवसाय के अनुसार नई नई जातियों में बटते गए। मनु भी सोनार, लोहार, और वैद्यों का उल्लेख करता है। परन्तु वह उनकी गिनती जुदी जातियों में नहीं करता। मनु के समय में वे जातियां नहीं थीं वरन् व्यवसाय थे और वे सब व्यवसाय करने वाले उस समय तक एक ही अविभाजित वैश्य जाति में सम्मिलित थे। मनु के समय तक लेखक, वैद्य और शिल्पकारों

को प्राचीन आर्य्यों के अधिकार प्राप्त थे अर्थात् उन्हें धार्म्मिक ज्ञान प्राप्त करने, धार्म्मिक विधानों को करने और यज्ञोपवीत पहिनने का अधिकार था। परन्तु हम लोग जाति भेद के फलों के लिये चाहे जितना खेद करें पर यह स्मरण रखना आवश्यक है कि सन् ईस्वी के तत्काल पहिले और तत्काल पीछे की शिताब्दियों में भी जाति भेद अपनी सब से बुरी अवस्था को नहीं प्राप्त हुआ था। पवित्र विद्या तब तक भी ब्राह्मणों की बपौती नहीं हो गई थी। और वे ईमानदार लोग जो कि लेखक, वैद्य, सोनार, लोहार, कोरी, कुम्हार इत्यादि का व्यवसाय करके अपना जीवन निर्वाह करते थे उस समय तक भी एक ही जाति में थे अर्थात् वे सब वैश्य थे और उस समय तक भी आर्य्यों की विद्या और धन प्राप्त करने के अधिकारी थे।

अब हम इन बातों का उदाहरण देने के लिए बङ्गाल की आज कल की कुछ बातों का वर्णन करेंगे। खास बङ्गाल अर्थात् उस देश के जहां की भाषा बङ्गला है (जिसमें कि प्रेसीडेन्सी, वर्द्धमान, राजशाही, ढाका, और चिटगांव की कमिश्नरियां सम्मिलित हैं) निवासियों की संख्या सन् १८८१ की मनुष्य गणना के अनुसार, ३५५००००० है। इनमें से मोटे हिसाब से १८००००००मुसल्मान, १७०००००० हिन्दू (जिनमें कि आदि वासियों की जातियां भी सम्मिलित हैं) और शेष ५००००० बौद्ध, इसाई इत्यादि हैं।

ये १७०००००० हिन्दू बहुत सी जातियों के हैं और वे जातियां जिनमें २००००० या इससे अधिक मनुष्य हैं नीचे दिखलाई जाती हैं।

१ कैवर्त	२००६०००	१७ बनियां	३१८०००
२ चण्डाल	१५६४०००	१८ जुगी	३०६०००

३ कोच	१२१५०००	१९ कमार	२८६०००
४ ब्राह्मण	१०७७०००	२० कुम्हार	२५२०००
५ कायस्थ	१०५६०००	२१ बौरी	२५२०००
६ बाग्दी	७२००००	२२ लेस्रोर	२२९०००
७ गोवाला	६१३०००	२३ धोबी	२२७०००
८ सद्गोप	५४७०००		
			१३७६००००
९ नापित	४४७०००	दूसरी जातियां जिनमें	
१० वैष्णव	४३९०००	२००००० मनुष्यों	
११ चमार	४१००००	से कम है	३४९४०००
१२ संरी	३८३०००		
१३ तेली	३८३०००	सब हिन्दू निवासियों	
१४ जेलिश्रा	३७५०००	का जोड़	१७२५४०००
१५ तांती	३३००००		
१६ पोद	३२५०००		

दो सबसे बड़ी जातियाँ अर्थात् कैवर्त और चाण्डाल का उल्लेख मनु ने अपनी मिश्रित जातियों की सूची में किया है। बङ्गाल के कैवर्त लोगों की संख्या २०००००० है जो कि बङ्गाल के समस्त हिन्दू निवासियों का लगभग आठवाँ भाग हुआ। उन सभों के शारीरिक आकार एकही से है, वे एकही व्यवसाय अर्थात् मछली मारने और खेती का कार्य्य करते हैं और उनमें धैर्य, परिश्रम, शिक्षा, शीलता और मन्द बुद्धि के गुण एकही प्रकार से पाए जाते हैं। इनमें से तीन भाग मनुष्य बङ्गाल के उत्तर पश्चिमी कोने में अर्थात् मिदनापुर, हुगली, हवड़ा, चौबीस परगना, नदिया और मुर्शिदाबाद के जिलों में रहते हैं। क्या हमारे पाठकों में कोई ऐसा भी सीधा सादा होगा जो मनु की इस बात पर विश्वास करे कि यह इतनी

बड़ी जाति जिनके कि चेहरे और विशेष लक्षण एक हो ले हैं और जो अधिक तर बङ्गाल के एक विशेष भाग में रहते हैं वे अयोगव जाति की स्त्रियों से उत्पन्न हुए हैं जिनमें से लाखों स्त्रियों ने अपने पति को छोड़ छोड़ कर निषादों को स्वीकार किया ? इस अद्भुत और अचलित पतित्याग अर्थात् अयोगव स्त्रियों के निषादों के द्वारा हरण किए जाने की दन्त कथाएँ कहाँ हैं कि जिनके आगे सबाइन स्त्रियों का हरण किया जाना केवल एक खेलवाड़ सा है ? बुद्धि ऐसे बेसिर पैर की कथाओं को नहीं स्वीकार करती और वह इन परिश्रमी और सीधे सादे लाखों कैवर्तों को उन आदि जातियों में पहिचान लेगी जो कि आर्य्यों के आने के पहिले बङ्गाल में बसती थीं और जिन्हों ने कि विजयी हिन्दुओं की सभ्यता, भाषा और धर्म्म का स्वीकार किया और उनसे उस भूमिको जोतना बोना सीखा जहां कि वे पहिले मछली मार कर और शिकार करके जीवन निर्वाह करते थे।

अब बङ्गाल के चण्डालों को देखिए। वे भी एक बहुत बड़ी जाति के हैं जिनमें कि १५००००० लोग हैं और जो अधिकतर बङ्गाल के दक्षिण पूर्वी स्थानों में अर्थात् बाकरगंज, फरीदपुर, ढाका, जैसोर और खुलना में रहते हैं। वे धैर्य्यवान और परिश्रमी हैं और नाव खेने और मछली पकड़ने में अद्वितीय हैं और ज़मीदार लोग ऊसर और दलदल भूमि को जोतने बोने योग्य करने के लिये उन्हें काश्तकार रखने से प्रसन्न होते हैं*परन्तु फिर भी चण्डाल लोग कोमल, डरपोक और

---

* ग्रन्थकार ने बाकरगंजके कुछ भाग के चण्डालों के एक अद्भुत ढंग को बहुधा देखा है जिससे कि वे लोग दलदल को जोतने बोने योग्य बना लेते हैं। वे यातो नहर खोद कर बीलों को समुद्री नदियों से मिला देते है जिसमें दलदल के ऊपर वर्षों तक नित्त चिकनी मिट्टी की तहें जमती

दुर्बल जाति के हैं और वे पूर्वी बङ्गाल के कठोर मुसल्मानों के अनेक अत्याचारों को बिना किसी शिकायत के सहते हैं। चाण्डालों में भी एक विशेष शारीरिक और मानसिक समानता है जिससे विदित होता है वे एक जुदाही जाति के हैं।

और यह जाति कैसे उत्पन्न हुई ? मनु कहता है कि वे उन ब्राह्मण स्त्रियों के सन्तान हैं जिन्हों ने शूद्र मनुष्यों को ग्रहण किया। दक्षिण-पूर्व बङ्गाल में प्राचीन समय में ब्राह्मणों की अधिक संख्या नहीं थी और अब भी उपरोक्त पांचों जिलों में उनकी संख्या ढाई लाख से भी कम है। अतएव मनु के सिद्धान्त के अनुसार इन जिलों में दस लाख चाण्डालों के होने का कारण बतलाना कठिन है। क्या हम यह विश्वास करें कि शुद्ध ब्राह्मणों की स्त्रियां बराबर काले शूद्र पुरुषों का ही ग्रहण करती रहीं ? क्या हम यह विश्वास करें कि लाखों रूपवती और दुर्बल ब्राह्मण कन्याओं को शूद्र लोग, जो कि एक नई जाति को उत्पन्न करने के लिये कमर बांधे हुए थे उनके पिता और माता के यहां से बहका ले जाते रहे ? अथवा क्या हम यह विश्वास करें कि इस सम्मेल से जो पुत्र उत्पन्न हुए उनकी वृद्धि दलदलों और मछली मारने वाले गावों में परिश्रम और दुःख के साथ रह कर भी अधिक हुई अर्थात् उनकी वृद्धि उन सच्चे ब्राह्मणों से भी अधिक हुई जिन्हें कि राज्यसम्मान और पुजेरियों के विशेष अधिकार प्राप्त थे ? हमें इन कल्पनाओं का उल्लेख केवल उनके बेतुकेपन को दिखलाने के लिये करना

रहें। अथवा वे दलदलों में उत्पन्न होने वाली एक प्रकार की घास एकत्रित करते हैं और दलदलों में उनकी तह के ऊपर तह निरन्तर रखते जाते हैं यहां तक कि सब से नीचे वाली तह भूमि के पेंदे में पहुंच जाती है। इस ग्रन्थकार ने इस प्रकार तय्यार की हुई भूमि पर वृक्ष और घर बने हुए देखे हैं।

है और इन कल्पनाओं के साथ मनु का मिश्रित जातियों के सिद्धान्त, कल्पित कथाएं और बालकों के किस्से कहानियों से प्रमाणित होते हैं ! हमारे जो पाठक बंगाल के चण्डालों के विषय में कुछ भी जानकारी रखते हैं उन्हें उनकी बुद्धि कह देगी कि ये लोग दक्षिण-पूर्वी बंगाल के आदिम निवासी थे और वहां जो बहुतायत से खाड़ी और नहर हैं उनमें मछली मार कर अपनी जीविका निर्वाह करते थे और जब आर्य लोग बंगाल में आकर बसे तो उन्होंने स्वभावतः हिन्दुओं का धर्म्म, उनकी भाषा और सभ्यता ग्रहण करली ।

हम यह दिखला चुके कि कैवर्त और चण्डाल लोग जुदी जुदी आदिवासी जाति के थे और जब उन्हें विजयी आर्यों ने हिन्दू बनाया तब उनकी हिन्दू जातियों में गणना हुई । बङ्गाल में ऐसे ही और भी हैं । पाठकगण उपरोक्त सूची में कोच, बाग्दी, पोद, बौरी और तेओर लोगों का नाम देखेंगे, और ये सब भिन्न भिन्न हैं । बंगाल में हिन्दुओं के आने के पहिले ये भिन्न भिन्न जातियां आदिवासी जाति की थीं और अत्यन्त प्राचीन काल की प्रत्येक शताब्दी में वे विजयी हिन्दुओं की शरण आती गईं और उनकी भाषा, धर्म और जोतने बोने की रीति को ग्रहण करके हिन्दुओं की जाति में नीच जातियां बन गईं । बंगाल की इन जातियों में से बहुत से नाम मनु को विदित नहीं थे । जो जातियां उसको विदित थीं उनकी उत्पत्ति के विषय में कोई ऐतिहासिक वा मनुष्य गणना के प्रमाण न होने के कारण उसने अपने ही सिद्धान्तों के अनुसार उनकी उत्पत्ति वर्णन करने का यत्न किया है ।

अब हम इन उपजातियों को छोड़ कर व्यवसाय करने वाली जातियों का उल्लेख करेंगे । उपरोक्त सूची में पाठकों

को कायस्थ वा लेखक, गोआल अर्थात् गैया रखने वाले, नापित अर्थात् हज़ाम, तेली अर्थात् तेल बनाने वाले, जेलियां अर्थात् मछुआहे, तांती अर्थात् कपड़ा बीनने वाले, बनियां अर्थात् व्यापारी, कुमर अर्थात् लोहार, कुम्हार अर्थात् मिट्टी के बर्तन बनाने वाले, धोबी अर्थात् कपड़ा धोने वाले, इत्यादि जातियों के नाम मिलेंगे। यह बात अद्भुत है कि मनु की मिश्रित जातियों की सूची में कुछ उपजातियों के नाम मिलते हैं परन्तु उस सूची में व्यवसाय करने वाली एक भी जाति का नाम नहीं मिलता। तो क्या ये व्यवसाय मनु के समय में थे ही नहीं? क्या मनु के समय में लेखक और व्यापारी लोग, लोहार, और कुम्हार लोग, हज़ाम और धोबी लोग थे ही नहीं? यह कल्पना बिना सिर पैर की है, क्योंकि मनु के समय में भारतवर्ष सभ्यता में बढ़ा चढ़ा था और मनुने अपनी स्मृति में इनके व्यवसाय का उल्लेख भी किया है। परन्तु उसने अपनी मिश्रित जातियों की सूचीमें उनका उल्लेख नहीं किया और न उन्हें जाति की भांति कहीं लिखा है। और इससे यह बात दृढ निश्चय के साथ प्रमाणित होती है कि मनु के समय में ये भिन्न भिन्न व्यवसाय केवल व्यवसायही थे। उनकी भिन्न भिन्न और जातियां नहीं बनी थीं। वैश्य लोगों की और ऐसेही शूद्र लोगों की भी अब तक एकही जाति थी यद्यपि वे लोग भिन्न भिन्न व्यवसाय और व्यापार करते थे।

अब हमको उन व्यवसाय की जातियों की सच्ची उत्पत्ति का पता लग गया जोकि मनु के समय में नहीं थीं और जो उसके उपरान्त बनी हैं। और हमको उन उपजातियों की उत्पत्ति भी विदित होगई जोकि मनु के समय के पहिले बन गई थीं और जो मनु को विदित थीं। और अन्त में हमें यह

भी विदित होगया कि मनु ने इन उपजातियों की उत्पत्ति लिखने में कैसी भूल की है। मनु की भूल ऐसी थी जिससे वह बच नहीं सकता था। उसने कैवर्तों और चण्डालों की नाईं भिन्न भिन्न जातियां देखी और उसे उन जातियों की उत्पत्ति का इतिहास विदित नहीं था। उसके समय में यह धार्मिक कथा प्रचलित थी कि सब मनुष्य जाति की चार मुख्य जातियों से ही उत्पत्ति हुई है और इसलिये उसे अपने समय की नई जातियों की उत्पत्ति के लिये भी इसी प्राचीन सिद्धान्त का आश्रय लेना पड़ा। यह सब बात समझ में आने योग्य है। जो बात समझ में नहीं आती वह यह है कि इस प्राचीन सिद्धान्त पर आज कल के ऐतिहासिक खोज और गणना के समय में भी कुछ हिन्दू लोग कैसे विश्वास करते हैं। परन्तु इस स्मृति की पवित्रता ही ऐतिहासिक खोज को दूर भगाती है, ठीक जांच को रोकती है और गुण और दोष की परीक्षा करने वालों का मुंह बन्द करती है। यही कारण है कि मिश्रित जातियों का प्राचीन सिद्धान्त बहुत से प्रमाणों और सम्भावनाओं के रहते हुए भी इतनी शताब्दियों तक मान और सत्कार की दृष्टि से देखा गया है। इसकी जांच तथा झूठ और सच की परीक्षा न किए जाने से यह सिद्धान्त सत्य धर्मावलम्बी हिन्दुओं के विचार और विश्वास में स्थान पाता रहा है। और फिर भी यह सिद्धान्त जो कि ऐसा सम्यक और समझ में आने योग्य तथा ऐसा पूर्ण है परीक्षा की अंगुली से छुए जाने के साथही साबुन के एक सुन्दर बुलबुले के सदृश लुप्त हो जाता है।

अध्याय ९

सामाजिक जीवन

मनु ने गृह्य विधानों का जो वृत्तान्त लिखा है वह प्राचीन सूत्रकारों के आधार पर ही है। जातकर्म्म बच्चे के जनमते ही नार काटे जाने के पहिले होना चाहिए। जन्म के दसवें वा बारहवें दिन वा किसी शुभ दिन, शुभ मुहूर्त और शुभ नक्षत्र में नामधेय की रीति की जानी चाहिए और बच्चों का नाम रक्खा जाना चाहिए। चौथे मास में निष्क्रमण की रीति करके बच्चे को घर के बाहर निकालना चाहिए और छठें मास में बच्चे के अन्नप्राशन अर्थात् उसे पहिली बार चावल खिलाने की रीति की जानी चाहिए। उपनयन अर्थात् विद्यारम्भ कराने की रीति ब्राह्मण के लिए आठवें वर्ष, क्षत्रिय के लिये ग्यारहवें वर्ष और वैश्य के लिये बारहवें वर्ष में की जानी चाहिए और तब लड़के को यज्ञोपवीत पहिना कर गुरू को सौंपना चाहिए।

विद्यार्थी के जीवन के नियम वे ही हैं जो कि धर्म्मसूत्रों में कहे हैं। विद्यार्थी को एक धोती, एक छड़ी, और एक वा दो कपड़े होने चाहिए। उसे अपने गुरु की आज्ञा मानना और उसका सत्कार करना चाहिए। उसे नित्य द्वार द्वार भीख मांग कर जो कुछ मिले उसे गुरु के सामने ला रखना चाहिए और प्रति दिन जब कि वह विद्या सीखता जाय तो उसे अपने गुरु के यहां रह कर उसकी सब प्रकार की नीच सेवा करनी चाहिए। केशान्त अर्थात् सिर मुड़ाने की रीति ब्राह्मण के लिए

१६ वें वर्ष, क्षत्रिय के लिए २२ वें वर्ष और वैश्य के लिए २४ वें वर्ष की जानी चाहिए।

तीनों वेदों के पढ़ने का समय ३६ वर्ष वा १८ वर्ष वा ९ वर्ष भी अथवा जब तक विद्यार्थी पूरी तरह उसे न पढ़ ले, कहा गया है। यहां पर (३, १) हमें चौथे वेद का नाम नहीं मिलता और न अथर्वन् के सीखने के लिये कोई समय नियत किया गया है। विद्यार्थी अपना अध्ययन समाप्त करने पर स्नान करके स्नातक हो जाता था और घर लौट कर विवाह करता था और फिर गृहस्थ होकर रहता था। विवाह के समय पवित्र अग्नि जलाई जाती थी और गृहस्थ को अपने गृहविधानों और पंच महायज्ञों को बराबर अपने जन्म भर करने की आज्ञा दी जाती थी। ये महायज्ञ ये हैं (१) पढ़ाना और पढ़ना जो कि उपमा की भांति परमात्मा (ब्रह्मन्) का यज्ञ कहा गया है, (२) पितरों को जल देना, (३) छोटे देवताओं को जली हुई वस्तुएं चढ़ाना (४) पितरों को बलि चढ़ाना और (५) अतिथियों का सदैव सत्कार करना जो कि मनुष्यों का यज्ञ कहा गया है (३, ६७, और ७०,) यह अन्तिम धर्म्म बहुत आवश्यक था और हिन्दू ऋषि लोग धार्मिक हिन्दुओं के हृदय पर अपने भाइयों के लिये इस महान कर्तव्य के अंकुरित करने में कभी नहीं चूके हैं।

पितरों को नित्य बलिदान देने के सिवाय प्रति मास पिण्ड पितृ यज्ञ (३, १२२) किया जाता था और उसमें पिण्ड बना कर पितरों को चढ़ाया जाता था। नित्य के बलिदान तथा मासिक बलिदान में ब्राह्मणों को भोजन कराया जाता था और सूत्रकारों की नाईं मनु भी मूर्ख ब्राह्मणों को भोजन कराने का बड़ा विरोधी है।

" जैसे किसान ऊसर भूमि में बीज बोकर फसिल नहीं काट सकता वैसे ही याज्ञिक भोजन देने वाला यदि उस भोजन को किसी ऐसे मनुष्य को खिलावे जो कि ऋचाओं को नहीं जानता तो उसे कोई फल नहीं होता।" (३, १४२)

" कोई मूर्ख मनुष्य देवताओं वा पितरों के यज्ञ में जितने ग्रास खाता है उतने ही लाल तपे हुए भाले, कील और लोहे के गोले भोजन खिलाने वाले को मृत्यु के उपरान्त निगलने पड़ते हैं "। (३, १३३)

दूसरे स्थान पर बिल्ली बगुले की नाईं कार्य्य करने वाले किसी ब्राह्मण को जल भी न देने के लिये कहा गया है। और मनु ने अपने समय के बिल्ली और बगुलों के ऐसे ब्राह्मणों की निन्दा जिन शब्दों में की है उनको उद्धृत करना हमारे हिन्दू भाइयों का अपमान करना होगा (४, १९२, १९५, १९६)

यज्ञों के विषय में लिखा है कि ब्राह्मणों को नित्य सन्ध्या और सवेरे अग्निहोत्र करना चाहिए, चन्द्रदर्शन और पूर्णिमा को उसे दर्श और पौर्णमास इष्टि करनी चाहिए, तीन ऋतुओं के अन्त में उसे चातुर्मास यज्ञ करना चाहिए, अयन के समय उसे पशुओं का बलिदान करना चाहिए और वर्ष की समाप्ति के समय सोम यज्ञ करना चाहिए। जब नया अन्न काटा जाय तो उसे आग्रयन इष्टि तथा एक पशु का बलिदान करना चाहिए। (४, २५–२७) इन विधानों तथा अन्य विधानों के जो वर्णन प्राचीन सूत्र ग्रन्थों में दिए हैं उनके लिए पाठकों को इस पुस्तक का चौथा भाग देखना चाहिए।

प्राचीन सूत्रों में कहे हुए इन दैनिक, मासिक और सामयिक विधानों को करने के लिए मनु ने जो आज्ञाएँ दी हैं

उनसे विदित होता है कि प्राचीन वैदिक रीतियों का व्यवहार अब बहुत कम होता जाता था। ऐसे वाक्यों से जैसे "जो ब्राह्मण पवित्र अग्नि रखता है" (४, २७) से विदित होता है कि ऐसी पवित्र अग्नि का रखना अब विरले कहीं होता था। नास्तिकों के विषय में जो कटुवाक्य लिखे हैं उनसे विदित होता है कि बौद्ध लोगों का प्रभाव प्राचीन धर्म और रीतियों पर बहुत अधिक पड़ रहा था। गृहस्थों के लिए वेद का खण्डन करने वाले किसी नास्तिक या तार्किक का सत्कार करना या उनसे भेंट करना भी निषेध किया गया है। (४, ३०) उसे वेद की व्यर्थ निन्दा या खण्डन से बचने के लिये कहा गया है (४, १६३) और जो स्त्री किसी नास्तिक के सम्प्रदाय को ग्रहण करे उसकी समानता व्यभिचारी स्त्रियों, शराबी स्त्रियों, अपने पति को मारने वाली स्त्रियों तथा भ्रूण हत्या करने वाली स्त्रियों से दी गई है। (५, ९०)

सम्भवतः यह हमको ठीक ठीक कभी विदित नहीं होगा कि वैदिक रीतियों और ऐतिहासिक काव्य काल तथा दार्शनिक काल के धर्म का किस किस अंश में और किस किस प्रकार से आधुनिक हिन्दू धर्म के रूप में परिवर्तन होगया। परन्तु यह बात निश्चय है कि जिस समय मनुस्मृति बनाई गई उस समय प्राचीन गृह्ययज्ञ जो कि गृहस्थों के घर में किए जाते थे, और अधिक आडम्बर के श्रौत यज्ञ जिन्हें पुजेरी लोग करते थे उनका प्रचार बहुत कम हुआ जाता था और उनका स्थान मन्दिर के वे पुजेरी ले रहे थे जिनकी समानता कि मनु ने मांस और मदिरा बेचने वालों तथा दुकानदारों और अधिक ब्याज खाने वालों से की है (३, १५२, १८०) इस स्मृति में प्राचीन धर्म को नए धर्मों के विरुद्ध स्थिर रखने के लिये व्यर्थ उद्योग किया गया है और इतिहास जानने वालों को इस

आपके जानने में बहुत कम कठिनाई पड़ेगी कि उस समय की क्या अवस्था हो रही थी।

मनु ने जिन जिन प्रकार के विवाहों को लिखा है वे धर्म सूत्रों में कहे हुए ही हैं। वह ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, गन्धर्व, राक्षस, और पैशाच विवाहों का उल्लेख करता है। परन्तु वह इनमें से कुछ विवाहों के विरुद्ध है, "पैशाच (लुभाना) और आसुर (बेचना) विवाह कभी नहीं करना चाहिए" (३,२५)। और फिर यह बहुत ज़ोर देकर कहा गया है कि "जो पिता इस नियम को जानता हो उसे अपनी कन्या के लिये कुछ भी भेंट नहीं लेनी चाहिए क्योंकि जो मनुष्य लालच वश भेंट लेता है वह अपनी सन्तान का बेचने वाला होता है" (३, ५४)। और इस विषय में कोई सन्देह न रखने के लिये यह भी कहा है कि शूद्र को भी विवाह की भेंट नहीं लेनी चाहिए और ऐसा व्यवहार कभी नहीं सुना गया है (९, ९८, और १००) परन्तु प्राचीन समय में सम्भवतः यह भेंट नीच जातियों में ली जाती थी जैसा कि भारतवर्ष में आज कल भी किया जाता है। और मनु ने एक स्थान पर असावधानी से यह नियम लिखा है कि यदि दुलहे को एक कन्या दिखलाई जाय और दूसरी कन्या दी जाय तो वह एकही मूल्य में दोनों से विवाह कर सकता है। (८, २०४)

इसी प्रकार मनु विधवा विवाह का भी बड़ा विरोधी है और यह प्राचीन रीति उत्तर काल के हिन्दुओं को अप्रिय हो रही थी परन्तु वह हमें असावधानी से यथार्थ बात को बतला देता है—और यह इतिहास जानने वाले के लिये मनु की सम्मति की अपेक्षा बहुत अमूल्य है कि विधवा विवाह उसके समय में भी प्रचलित था, यद्यपि कट्टर लोग उसे नहीं पसन्द करते

थे। लिखा है कि विधवा को अपने पति की मृत्यु के उपरान्त किसी दूसरे पुरुष का नाम भी न लेना चाहिए (५, १५७) और धार्म्मिक स्त्रियों के लिये दूसरे पति का ग्रहण करना कहीं नहीं लिखा गया है (५, १६२)। परन्तु फिर भी हमें पुनःविवाहिता स्त्रियों, (३, १६६) और पुनर्विवाहिता विधवाओं के पुत्रों (३, १५५ और १८१; ९, १६९, १५७ और १७६) का उल्लेख मिलता है। अक्षत विधवाओं के पुनः विवाह करने की स्पष्ट आज्ञा दी गई है। ऐसी विधवा "अपने दूसरे पति के साथ विवाह करने के योग्य है।" (९, १७६)

हम ऊपर देख चुके हैं कि एक जाति से दूसरी जाति में स्वतन्त्रता से विवाह होता था परन्तु किसी नीच जातिका मनुष्य उच्च जाति की स्त्री से विवाह नहीं कर सकता था।

मनु के समय में सम्बंधियों के साथ विवाह करने का बड़ा निषेध था। "ऐसी कन्या जो न तो माता के कुल में सपिण्ड हो और न पिता के कुल में सम्बन्धी हो वह द्विज मनुष्यों के विवाह और पति सम्मेल के योग्य कही गई है"। (३,५)

जिस अवस्था में कन्या का विवाह होना चाहिए उस विषय के नियमों से विदित होता है कि यद्यपि कभी कभी कन्याओं का विवाह उनके युवा होने के पहिले ही हो जाता था परन्तु यह किसी प्रकार आवश्यक नहीं था और बहुधा उनका विवाह इस के उपरान्त होता था। उसने लिखा है कि ३० वर्ष के मनुष्य को १२ वर्ष की कन्या से विवाह करना चाहिए और इस से छोटे मनुष्य को इससे भी छोटी कन्या के साथ (१०, ९४) उसने फिर कहा है कि पिता को चाहिए कि वह अपनी कन्या को किसी प्रसिद्ध सुन्दर पुरुषको दे दे "यद्यपि वह अपनी उचित अवस्था को न भी प्राप्त हुई हो।"

यह एक विशेष अवस्था के लिये लिखा गया है और इस लिये हमें यह समझना चाहिए कि साधारण नियम कन्याओं का विवाह उचित अवस्था में करने का था। और यह भी स्पष्ट रीति से कहा गया है कि कन्या जब विवाह के योग्य हो तो उसे तीन वर्ष तक ठहरना चाहिए और तब उसे अपना विवाह करना चाहिए (९,९०) और उसके पिता को चाहिए कि वह योग्य वर के साथ उसका विवाह करे और यदि ऐसा न हो तो उसे जन्म भर कुँआरी ही रक्खे (९,८९)

जान पड़ता है कि भाई की विधवा स्त्री से पुत्र उत्पन्न करने की प्राचीन रीति उठ गई। मनु प्राचीन नियम का पालन करने के लिये और साथ ही अधिक शुद्ध रीति प्रगट करने के लिये अपनी ही बातों का खण्डन कर गया है (१०,५९ और १६ में) वह कहता है कि जिस स्त्री या विधवा को अपने पति से संतान न होने पर अधिकार प्राप्त हो, वह अपने पति के भाई (देवर) से या पति के किसी दूसरे सपिण्ड से सन्तान उत्पन्न कर सकती है। परन्तु इसके उपरान्त ही वह ज़ोर देकर कहता है कि विधवा को इस प्रकार सन्तान उत्पन्न करने के लिये कभी नियुक्त न करना चाहिए, धर्म्म पुस्तकों में विधवाओं के इस प्रकार नियुक्त करने के लिये कहीं अधिकार नहीं दिया गया है और इस रीति को पण्डित लोग पशुओं के योग्य समझते हैं (९,६४ से ६८ तक) यह कुछ कटु भाषा है और इस से विदित होता है कि यह प्राचीन रीति मनु के समय में कैसी घृणा की दृष्टि से देखी जाती थी।

ऊपर जो कुछ लिखा गया है उससे देखा जायगा कि मनु की स्मृति कुछ मिश्रित गुणमय है। ग्रन्थकार ने प्राचीन नियम को मानने का यत्न किया है उसने बहुधा अपने समय की

प्रचलित कहावतों और छन्दों को उद्धृत किया है जिनमें से बहुत महाभारत में पाए गए हैं—और साथही वह आर्य्यों के लिये एक शुद्ध नियम प्रगट करने का भी उत्सुक है। ऐसे भिन्न भिन्न विचारों को रखने के कारण मनु बहुधा नियमों को देने में अनिश्चित है परन्तु उसके नियम का साधारण अभिप्राय और उद्देश्य किसी सच्चे पाठक की समझमें यथार्थ रूप से आए बिना नहीं रह सकता। और यदि कोई पाठक इस स्मृति के उन सब अध्यायों और छन्दों को ध्यान पूर्वक पढ़े जो कि स्त्रियों की अवस्था के विषय में हैं तो कुछ बाधा डालने वाले वाक्यों के रहते हुए भी उस मनु के समय में हिन्दू सभ्यता और चाल व्यवहार की तथा स्त्रियों की उच्च अवस्था निस्सन्देह विदित होगा।

स्त्रियाँ अपने वंश के पुरुषों की आश्रित समझी जाती थीं,—इस बात को मनु ज़ोर देकर कहता है। परन्तु फिर भी स्त्रियों का उनके कुल में सत्कार होता था, उनके सम्बन्धी लोग तथा जिस समाज में वे रहती थीं वे सब उनको सत्कार की दृष्टि से देखते थे अब यह बात केवल मनु के नियमों से ही नहीं वरन् सब संस्कृत ग्रन्थों के प्रतिबिम्ब सी विदित होती है।

"उपाध्याय की अपेक्षा आचार्य्य दस गुना पूज्य है, आचार्य की अपेक्षा पिता सौ गुना, परन्तु पिता की अपेक्षा माता हजार गुनी पूज्य है (२, १४५)।

"स्त्रियों के पिता, भाई, पति और देवर का जो कि उनके हित चाहने वाले हैं, सत्कार करना चाहिए।

"जहां स्त्रियों का सत्कार होता है वहीं देवता प्रसन्न रहते हैं परन्तु जहां उनका सत्कार नहीं होता वहां पुण्य के कर्म्मों का कोई फल नहीं मिलता।

"जिस वंश में स्त्रियां शोक में रहती हैं उस वंश का शीघ्रही सत्यानाश होजाता है परन्तु जहां स्त्रियां सुखी रहती हैं उस वंश की सदा वृद्धिहोती है।" (३. ५५—५७)

इसके सिवाय स्त्रियों के कर्तव्यों का भी ऐसाही स्पष्ट वर्णन है।

"स्त्री को बाल्यावस्था में अपने पिता के आधीन रहना चाहिए और युवा अवस्था में अपने पति के आधीन, अपने पति की मृत्यु पर अपने पुत्रों के आधीन। स्त्रियों को कभी स्वतन्त्र नहीं रहना चाहिए।

"उसे अपने पिता, पति वा पुत्रों से जुदे होने का विचार नहीं करना चाहिए। उनको छोड़ने से वह अपने और अपने पति के वंशों को कलङ्कित करती है।

"उसे सदैव प्रसन्न रहना चाहिए, अपने घर के कार्य्यों में चतुर, अपने बर्तन साफ करने में सावधान और अल्पव्ययी होना चाहिए।

"उसका पिता वा उसके पिता की आज्ञा से उसका भाई जिस मनुष्य के साथ उसका विवाह करदे उसकी आज्ञाओं का पालन उसे यावज्जीवन करना चाहिए और उसकी मृत्यु के पीछे उसकी स्मृति का अपमान नहीं करना चाहिए।

"पति यद्यपि गुणों से रहित हो वा विलास में लिप्त हो अथवा पुण्यात्मा न हो तथापि धार्म्मिक स्त्री को सदा देवता की नाईं उसकी पूजा करनी चाहिए।

"स्त्रियों को अपने पति से अलग कोई यज्ञ संकल्प वा व्रत नहीं करना चाहिए। यदि स्त्री अपने पति की आज्ञाओं का पालन करे तो केवल उससे ही वह स्वर्ग में जायगी।" (५, १४८—१५१, और—१५४, १५५)।

अध्याय १०

राज्य प्रबन्ध।

मनु राजाओं के नित्यकृत्य और घरेलू जीवन का बड़ा मनोहर वर्णन देता है।

अपनी प्रजा की रक्षा करना, पक्षपात रहित होकर न्याय करना, अनुचित करनेवाले को दण्ड देना, ये राजाओं के मुख्य कर्तव्य थे और स्वयं समाज का अस्तित्व इन्हीं कर्तव्यों के पालन पर निर्भर था (७, २, १६—३५) मद्य, जुआ, स्त्री, और अहेर, ये राजाओं के सबसे बड़े अवगुण थे। (७, ५०)

राजा रात्रि के अन्तिम प्रहर में उठता था और अपने शरीर की शुद्धि तथा अग्नि में हवन करने के उपरान्त वह प्रातःकाल सभाभवन में जाता था। वहां जो प्रजा उससे भेंट करने जाती थी उसे वह प्रसन्न करता था और उसे विदा करके एकान्त में अपने मन्त्रियों से सलाह करता था जहां कि सर्वसाधारण नहीं जाने पाते थे, (७, १४५—१४७) सलाह हो जाने के उपरान्त राजा अपना नियमित व्यायाम करता था और स्नान करके भोजन के लिये महल में जाता था। नमकहलाल नौकर लोग भोजन तय्यार करते थे जो कि पवित्र मन्त्रों के द्वारा शुद्ध और विष से रहित किया जाता था। और भली भांति जंची हुई स्त्रियां पंखे, जल और सुगन्ध से उसकी सेवा करती थीं। भोजन के विषय में जो सावधानी लिखी गई है वही राजा की गाड़ी, बिछौने, आसन, स्नान, शृंगार और आभूषणों के सम्बन्ध में भी कही गई है और

उससे विदित होता है कि राजाओं के भोज्य कार्यों में विष वा छल के द्वारा मृत्यु की दुर्घटना न होने का पूरा प्रबन्ध रहता था। (७, २१६— २२०)

भोजन के उपरान्त राजा महल में अपनी स्त्रियों के साथ कुछ समय व्यतीत करता था परन्तु तीसरे पहर वह फिर राजसी वस्त्र पहन कर निकलता था और अपने योद्धाओं, रथों, पशुओं, शस्त्रों और युद्ध की सामग्रियों की देख भाल करता था और तब अपनी संध्या समय की पूजा करने के उपरान्त वह अपने जासूसों से बातें करता था और वे जिन गुप्त बातों का पता लगाते थे उन्हें सुनता था। इसके उपरान्त वह अपने महल में जाकर भोजन करता था और फिर गान से अपना जी बहला कर शयनागार में जाता था। (७, २२१–२२५)

राज्यप्रबन्ध में राजा की सहायता के लिये मंत्री होते थे— मनु कहता है कि सात वा आठ मंत्री होते थे-जोकि शास्त्रों के ज्ञाता, शस्त्र विद्या में निपुण, उत्तम और ऊंचे हुए वंश के होते थे। ये मंत्री राजा को शान्ति और युद्ध में, कर और दान के विषयों में सम्मति देते थे। राजा कर उगाहने के लिये तथा खानों, शिल्पशालाओं और भण्डारों के लिये योग्य पुरुषों को नियत करता था और अपने कार्यों के सम्पादन के लिये ऐसे राजदूत को रखता था "जो इशारे और मुंह की आकृति और चेष्टाओं को समझता हो" (७, ५४–६३)

गाँव और नगर की रक्षा करने के लिये जुदे जुदे कर्मचारी नियत किए जाते थे। राजा प्रत्येक गांव का एक स्वामी, दस गाँव के ऊपर एक स्वामी, २० गाँव पर एक स्वामी, १०० गाँव के ऊपर एक स्वामी, और १००० गाँव के ऊपर एक स्वामी, नियत करता था और उन लोगों का यह कर्तव्य था

कि गाँव के निवासियों की रक्षा करें और जुर्म को रोकें। इसी प्रकार प्रत्येक नगर में भी सब कार्यों की देख भाल के लिये एक सरदार होता था जो स्वयं सब कर्मचारियों के कार्य्य की देख भाल करता था और उनकी चाल व्यवहार के विषय में गुप्त रीति से पता रखता था। "क्योंकि राजा के ये नौकर जो प्रजा की रक्षा के लिये नियत किए जाते हैं बहुधा दुष्ट हो जाते हैं और दूसरों की सम्पत्ति छीनते हैं। उसे चाहिए कि ऐसे मनुष्यों से अपनी प्रजा की रक्षा करे" (७, ११५—१२३) राज्य कर्मचारियों के लुटेरेपन के विषय में ये बड़े कटुवाक्य हैं परन्तु आज कल के प्रबन्ध करने वाले कर्म्मचारियों में से बहुत कम ऐसे होंगे जो कि इस निन्दा को आजकल की प्रजा रक्षकों अर्थात् उन पुलिस अफसरों के लिये कटु समझेंगे जिनके अधीन एक बड़ा थाना होता है जिसमें पचास हजार वा एक लाख मनुष्य वसते हैं।

राजा की अपनी सम्पत्ति से जो आय होती थी उसकी न्यूनता राज्य कर से पूरी की जाती थी। मनु "पशु और स्वर्ण की वृद्धि पर पचासवां भाग" राज्यकर नियत करता है जो कि प्रायः सैकड़े में दो के हिसाब से हुआ और "अन्न के लिये आठवां, छठाँ, वा बारहवाँ भाग नियत करता है जो कि आजकल की लगान से बहुत कम हुआ। राजा वृक्ष, मांस, मक्खन, मिट्टी और पत्थर के बर्तन इत्यादि पर छठां भाग ले सकता था और मास में एक दिन शिल्पकारों और मजदूरी करने वाले शूद्रों से कार्य्य करवा सकता था। परन्तु उसे किसी अवस्था में भी श्रोत्रियों पर कर नहीं लगाना चाहिए। और अन्त में राजा बहुत अधिक कर न लगाने के लिये सचेत किया गया है। "उसे बहुत अधिक लालच से अपनी जड़ तथा

दूसरों की जड़ भी न काटनी चाहिए, क्योंकि अपनी या दूसरों की जड़ काटने से वह अपने को या दूसरों को अति दुखी बनाता है।" (७, १३०—१३६)

राज्य प्रबन्ध और कर लगाने के इन तथा अन्य नियमों से विदित होता है कि अब से दो हजार वर्ष पूर्व से लेकर १५०० वर्ष के भीतर भारतवर्ष में शासन की एक प्रणाली प्रचलित थी। और इस देश में चीन और यूनान के जो ग्रन्थकार रहे थे उनकी साक्षी से विदित होता है कि ये सब विचार केवल सिद्धान्तकारों और ग्रन्थकारों के ही नहीं थे वरन उन्हें राजा और उनके कर्मचारी लोग व्यवहार में लाते थे। मेगास्थिनीज़ चन्द्रगुप्त के राज्य की बड़ी प्रशंसा करता है और फाहियान तथा ह्वेनसाङ्ग जिन्होंने भारतवर्ष में कई वर्षों तक रह कर यहां के कई राज्यों को देखा था वे भी हिन्दुओं की राज्यप्रणाली की प्रशंसा करते हैं और उन्होंने कहीं भी प्रजा पर अधिक कर लगाए जाने वा राजाओं के मन माने अत्याचारों से उनके कलेश पाने वा भयानक युद्धों द्वारा उनके सत्यानाश का कहीं उल्लेख नहीं किया है। इसके विरुद्ध उन्होंने जो वर्णन किया है उससे हम उन्हें एक सुखी और भाग्यवान जाति पाते हैं जो कि अपने राजा की बड़ी भक्त थी, और दयालु, उपकारी तथा सभ्य राज्य प्रणाली के सुखों को भोग रही थी। खेती सब जगह भरी पूरी थी, शिल्प की उन्नति हो रही थी, विद्या को हिन्दू और बौद्ध दोनों ही समान रीति से बड़े परिश्रम के साथ पढ़ते और उसका सत्कार करते थे। । धर्म की शिक्षा मन्दिरों और मठों में बिना किसी रोक टोक के होती थी और लोग बिना किसी अत्याचार वा हस्तक्षेप के अपना अपना कार्य्य करते थे। परोपकारी राज्य प्रणाली के ये चिन्ह स्मृति के कैसे

ही उचित और दयालु नियमों की अपेक्षा अधिक विश्वास दिलाने वाले हैं।

रक्षा के लिये किलों की बड़ी कदर की जाती थी और मनु कहता है कि "किले में एक धनुष चलाने वाला युद्ध में १०० शत्रुओं का सामना कर सकता है" (७-७४)। वह कहता है कि राजा को अपनी रक्षा के लिये एक किला अवश्य बनाना चाहिये और उसे बियाबान वा जल वा वृक्षों, खाई वा शस्त्रधारी योद्धाओं के द्वारा रक्षित रखना चाहिए, परन्तु वह पहाड़ी के किलों को सब से उत्तम समझता है जो कि सब किलों से अधिक दृढ़ होते हैं। और इन किलों को शस्त्र, द्रव्य, अन्न तथा बोझ ढोने वाले पशुओं और ब्राह्मणों, शिल्पकारों, यन्त्रों और सूखी घास और जल से भली भांति भरा रखना चाहिए (७, ७०, ७१, ७५) ऐसे पहाड़ी किलों की कदर भारतवर्ष के आधुनिक युद्धों में बारम्बार प्रमाणित हुई है और खाने पीने की सामग्री तथा स्वाभाविक रक्षाओं और वीर योधाओं से सज्जित एक एक किले से आक्रमण करने वाले शत्रु की समस्त सेना का बहुधा नाश हो गया है।

हिन्दुओं में युद्ध के नियम सदा से सत्कार योग्य तथा दयालु होते आए हैं। रथ, घोड़े, हाथी, अन्न, पशु और स्त्रियां जो युद्ध में जीते जांय वे जीतनेवाले के होते हैं, परन्तु उसके लिए भागते हुए शत्रु वा ऐसे शत्रु को मारने का कड़ी निषेध है जो कि हाथ जोड़कर बैठ जाय और कहे कि "मैं तुम्हारे अधीन हूँ।" इसी प्रकार शस्त्रहीन मनुष्य, घायल मनुष्य वा केवल तमाशा देखनेवाले मनुष्यों को जो युद्ध में सम्मिलित न हों, कोई दुःख नहीं देना चाहिए (७-९१, ९२, ९३, ९६) इन नियमों का प्राचीन समय से लेकर आधुनिक राजपूतों के

युद्धों तक सावधानी से पालन किया गया है और विदेशियों ने गांव के निवासियों को अपने नित्य का काम शान्ति से करते हुए और किसानों को अपना खेत बिना किसी आशंका के जोतते हुए ऐसे समय में देखा है जब कि उनके सामने ही दो फौजें राज्य के लिये लड़ रही हों।

राजाओं की नीति और युद्ध का प्रबन्ध करने के लिए अनेक नियम दिए गए हैं जिनमें से कुछ मनोरञ्जक हैं। अपने सबसे निकट के राजा को अपना शत्रु समझना चाहिए और उसके उपरान्त के देश के राजा को मित्र समझना चाहिए, और इस नियम का उदाहरण आज कल यूरप— फ्रान्स, जर्मनी— और एशिया की राजनीति में भी पाया जाता है (७, १५८) आज कल की नाईं उस समय भी डील के लम्बे मनुष्य भारत-वर्ष में सबसे उत्तम सैनिक समझे जाते थे और राजाओं के लिये मत्स्य, पाञ्चाल, कुरुक्षेत्र और सूरसेन देश के लोगों को अपनी सेना में रखनेकी और युद्ध में उन्हें आगे की ओर रखने की सम्मति दी गई है (७, १९३)। सेना को प्रस्थान करने के लिए जाड़े के आरम्भ अथवा समाप्ति का समय उपयुक्त कहा गया है परन्तु युद्ध की आवश्यकता के अनुसार किसी समय भी सेना प्रस्थान कर सकती थी (७, १८२, १८३)। कहीं कहीं पर हम लोगों को उन नियमों की अद्भुत झलक मिलती है जिनके अनुसार प्रस्थान वा युद्ध में सेना सुसज्जित की जाती थी। प्रस्थान में सेना छड़ी की नाईं (आयत के आकार में) वा गाड़ी (वेज=त्रिकोणाकार) की नाईं वा सूअर (विषम समचतुर्भुज) की नाईं वा मकर (दोत्रिभुज जिनकी शिखा मिली हो) की नाईं वा सूई (लम्बी पंक्ति) की नाईं वा गरुड़ (विषम समचतुर्भुज जिसकी शाखाएं फैली हुई हों) की

नाईं रक्खी जाती थी। युद्ध में कुछ सैनिक निकट निकट रक्खे जा सकते थे, वा सैनिकों के बीच अधिक स्थान छोड़कर सेना फैलाई जा सकती थी या कुछ लोग सूई की नाईं एक पंक्ति में होकर लड़ सकते थे अथवा बहुत से लोग वज्र के आकार में सज्जित किए जा सकते थे (७, १८७ और १९१)। जब कोई शत्रु किसी नगर वा किले में हो तो आक्रमण करने वालों को उसके बाहर घेरा डाल कर शत्रु की घास अन्न लकड़ी और जल नाश कर देना चाहिए, उसके तालाब, किले की दीवाल और खाई को नष्ट करना चाहिए, रात्रि के समय उसको बिना जनाए हुए आक्रमण करना चाहिए वा उसकी प्रजा और उसके लोगों को बहका कर बलवा कराना चाहिए (७, १९५—१९७)।

और जब कोई राजा अपने शत्रु को जीते तो उसे पराजित राजा के किसी सम्बन्धी को पराजित प्रजा की सम्मति के अनुसार गद्दी पर बैठाना चाहिए और उनके देश की रीतियों और नियमों को मानना चाहिए (७, २०२, २०३)। ये न्याययुक्त और दयालु नियम हैं जो कि हिन्दू विजयी राजाओं के योग्य हैं।

अध्याय ११ ।

कानून ।

मनुस्मृति में बारह अध्याय हैं जिनमें २६८५ श्लोक हैं। इसके दो सबसे बड़े भागों में (८ वें और ९ वें भाग में) ७५६ श्लोक हैं और वे दीवानी और फ़ौजदारी के कानून से सम्बन्ध रखते हैं। इनमें से बहुत से कानून प्राचीन सूत्रकारों के ही कानूनों के पुनरुल्लेख या परिवर्तित रूप हैं।

प्राचीन भारतवर्ष में राजा न्याय का मूल था और मनु कहता है कि राजा को विद्वान् ब्राह्मणों और अनुभवी मंत्रियों को साथ लेकर न्यायालय में जाना चाहिए और वहां न्याय का कार्य्य करना चाहिये। यदि राजा स्वयं इस कार्य्य को न करे तो उसे तीन परसेसर की सहायता से इस कार्य्य को करने के लिये विद्वान ब्राह्मणों को नियत करना चाहिए। "जहां राजा के नियत किए हुए वेदों के जानने वाले तीन ब्राह्मण और एक विद्वान न्याय कर्ता बैठते हैं वह ब्रह्मा की सभा कही जाती है।" (८-१, २, ६, १०, ११,) सत्य बोलने के लिये जो आज्ञा दी गई है वह ऐसी गम्भीर और कड़ी है जैसी कि किसी विरले ही समय या देश में रही होगी।

"या तो न्यायालय में जाना ही नहीं चाहिए अथवा जाय तो सत्य बोलना चाहिए। जो मनुष्य या तो कुछ नहीं कहता (अर्थात् सत्य को छिपाता है) अथवा झूठ बोलता है वह पापी होता है।" (८-१३)

"न्यायालय में वादी और प्रतिवादी के सामने गवाहों के एकत्रित होने पर न्यायकर्ता को उन्हें मेहरबानी के साथ इस प्रकार समझाकर उनकी परीक्षा करनी चाहिए—

हमारे सामने खड़े हुए दोनों मनुष्यों में इस विषय में परस्पर जो बातें हुई हों उनका जो वृत्तान्त तुम्हें विदित हो वह सब सत्य सत्य कहो क्योंकि इस अभियोग में तुम साक्षी हो।

"जो गवाह अपनी गवाही में सत्य बोलता है वह मृत्यु के पीछे सब से उत्तम स्वर्ग और इस लोक में अद्वितीय यश पाता है। ऐसी साक्षी का स्वयं ब्रह्म सत्कार करता है।

"जो मनुष्य झूठी साक्षी देता है वह वरुण के बन्धन में बंधता है और १०० जन्मों तक दुःख पाता है। अतएव मनुष्यों को सत्य साक्षी देनी चाहिए।

"सत्यता से, साक्षी देनेवाला पवित्र होता है, सत्यता से उसके यश की वृद्धि होती है अतः सब जाति के साक्षी देनेवालों को सत्य बोलना चाहिए।

"जीव की साक्षी स्वयं जीव है, जीव की शरण स्वयं जीव है। अपने जीव का, जो मनुष्यों की परम साक्षी है निरादर मत करो।

"पापी अपने मन में समझता है कि हमें कोई नहीं देखता। परन्तु देवता लोग उसको और उसके हृदय के भीतर के भाव को स्पष्ट देखते हैं।

"आकाश, पृथ्वी, जल, हृदय, चन्द्रमा, सूर्य्य, अग्नि, यम, वायु, रात्रि, और दोनों गोधूली और न्याय सब देहधारी प्राणियों के कर्मों को जानते हैं।" (८, ७९-८६)

इसके आगे जो आदेश किए गए हैं वे और भी गंभीर हैं—

"जो मनुष्य झूठी गवाही देगा वह नंगा होकर भूख और प्यास से व्यथित और अन्धा होकर अपने शत्रु के द्वार द्वार ठिकरा लेकर भीख मांगेगा।

"जो पापी मनुष्य न्यायकर्ता के एक प्रश्नका भी झूठ उत्तर देता है वह सीधे नर्क के पूर्ण अन्धकार में ठोकर खाता है।" (८, ९३, ९४)।

और आठवें भाग के १२३ वें श्लोक में यह कहा है कि जो मनुष्य झूठी साक्षी दे उसे राजा को अपने देश से निकाल देना चाहिए।

जो लोग साक्षी देने के योग्य नहीं थे और जो साक्षी देने से बरी किए गए थे उनकी एक बड़ी सूची दी गई है। ऐसे मनुष्य जो अभियोग से सम्बन्ध रखते हों, जो वादी वा प्रतिवादी के मित्र वा शत्रु हों, जो पहिले झूठी साक्षी देने के दोषी हो चुके हों और जो किसी पाप से कलङ्कित हों वे लोग साक्षी देने के अयोग्य समझे जाते थे। और राजा, श्रोत्रिय, वेद पढ़ने वाले विद्यार्थी तथा शिल्पकार और भांड़लोग साक्षी देने से बरी थे। परन्तु यह स्पष्ट है कि ये नियम कठोरता से पालन किए जाने के लिये नहीं थे और आगे चल कर लिखा है कि उपद्रव, चोरी, व्यभिचार, बदनामी करने, और मारपीट की अवस्थाओं में अर्थात् फौजदारी के अभियोगों में साक्षी की अयोग्यता के नियम का कठोरता से पालन नहीं करना चाहिए। (८, ६४, ६५, ७२)

मनु समस्त मुख्य कानूनों को १८ भागों में बांटता है अर्थात् (१) ऋण (२) धरोहर (३) किसी सम्पत्ति के स्वामी हुए बिना उसे बेचना (४) सांझा (५) दान का फेर

लेना (६) वेतन न देना (७) प्रतिज्ञा का पालन न करना (८) बिक्री और खरीद की हुई वस्तु का लौटाना (९) स्वामी और सेवकों के झगड़े (१०) सीमा के सम्बन्ध के झगड़े (११) मार पीट (१२) बदनामी करना (१३) चोरी (१४) डांका और उपद्रव (१५) व्यभिचार (१६) पति और पत्नी के कर्तव्य (१७) उत्तराधिकार पाना (१८) जुआ खेलना और बाज़ी लगाना। यह विदित होगा कि ११ से लेकर १५ संख्या तक तथा १८ संख्या के कानून फ़ौजदारी से सम्बन्ध रखते हैं और शेष सब दीवानी से। मनु ने इन विषयों को जिस क्रम में रक्खा है उसी क्रम से हम भी उनका वर्णन करेंगे और प्रत्येक विषय में हमारा कथन अवश्य ही बहुत संक्षिप्त होगा।

(१) ऋण—इस विषय में मनु अपने समय के प्रचलित तौलों की एक सूची देता है। यह सूची सब से छोटे तौल अर्थात् त्रसरेणु से आरम्भ होती है। त्रसरेणु उस ज़र्रे को कहते हैं जो कि किसी खिड़की के द्वारा आनेवाली धूप में दिखलाई देता है।

८	त्रसरेणु	=	१	लिक्षा (ढील के अंडे)
३	लिक्षा	=	१	राई
३	राई	=	१	सरसों
६	सरसों	=	१	यव
३	यव	=	१	क्रिश्नल या रक्तिका
५	रक्तिका	=	१	माश
१६	माश	=	१	सुवर्ण
४	सुवर्ण	=	१	पल
१०	पल	=	१	धरन

२	किश्मल (चांदी-का)	=	१	माशक (चांदी-का)
१६	माशक	=	१	धरन (चांदी की)
१	कर्ष तांबे का	=	१	कार्षापण या पण
१०	धरन (चांदी)	=	१	शतमान
४	सुवर्ण	=	१	निष्क

(८, १३१–१३७)

ऋण पर व्याज के विषय में मनु ने वसिष्ठ के धर्मसूत्र को उद्धृत किया है। वह कहता है कि "ऋण देने वाला अपनी पूंजी की वृद्धि के लिए वसिष्ठ के कहे अनुसार व्याज ले कर सकता है और प्रति मास एक सौ का ८० वां भाग ले सकता है। यह पन्द्रह रुपये सैकड़ा वार्षिक व्याज हुआ और यह व्याज जमानत पर लिया जाता था, परन्तु बिना जमानत के ऋण पर व्याज ऋण लेने वाला यदि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र हो तो उसी के अनुसार २४) रु०, ३६) रु०, ४८) रु०, या ६०) रु०, सैकड़ा होता था (८, १४०—१४२)। परन्तु यह कहना अनावश्यक है कि व्याज का यह क्रम केवल नाम मात्र को था और ऋण देने वाला ऋण लेने वाले की जाति की अपेक्षा उसकी रुपया चुकाने की योग्यता पर अधिक ध्यान देता था।

ऐसा जान पड़ता है कि ऋण लेने वाला अन्य सम्पत्ति की नाईं दासियों को भी गिरों रख सकता था (८, १४६) यदि गिरों रखने की वस्तु ऐसी हो जिससे कुछ आय होती हो (यथा भूमि) तो व्याज नहीं लिया जाता था (८, १४३)। साठ रुपए सैकड़ा वार्षिक व्याज अधिक से अधिक था (८, १५२), परन्तु जिस अवस्था में व्यापारी लोग समुद्र यात्रा करते थे उसमें, सम्भवतः जोखिम के बीमे के लिए, विशेष

ब्याज लिया जा सकता था (८, १५७)। और अन्त में यह भी कहा है कि जो प्रतिज्ञाएं नशे की अवस्था में अथवा नियम और रीति के विरुद्ध, या छल अथवा जबरदस्ती की जाती थीं वे नाजायज़ समझी जाती थीं (८, १६३-१६८)

(२) धरोहर-जिस मनुष्य के यहां खुली हुई अथवा बन्द मोहर की हुई धरोहर रक्खी जाती थी वह कानूनन उसे लौटा देने के लिए बाध्य था यदि वह धरोहर चोरी न गई हो, पानी में वह न गई हो या आग में जल न गई हो। यह जान पड़ेगा कि बेइमानी करके बिना धरोहर रक्खी हुई वस्तु को मांगना और धरोहर को लौटाने के समय नकार जाना किसी भांति अविदित नहीं था, और इन दोनों अवस्थाओं में दोषी को चोर की भांति दण्ड दिया जाता था। (८, १९१)

(३) बिना अधिकार के सम्पत्ति का बेचना-ऐसी बिक्री नाजायज समझी जाती थी और बेचने वाला यदि सम्पत्ति के स्वामी का कोई सम्बन्धी हो तो उसे ६०० पण का दण्ड लगाया जाता था और यदि सम्बन्धी न हो तो उसे चोर की भांति दण्ड दिया जाता था (१९८, १९९)

(४) सांझा-जान पड़ता है कि जो पुरोहित मिलकर किसी धार्मिक कृत्य को करवाते थे उनमें दान का बटवारा करने में बहुधा झगड़े उठते थे। मनु कहता है कि अध्वर्यु को रथ, ब्राह्मण को घोड़ा, होत्रि को भी घोड़ा, और उद्गातृ को गाड़ी लेनी चाहिए। और यह स्मृतिकार कहता है कि इस सिद्धान्त के अनुसार साथ मिलकर कार्य करने वालों में बटवारा होना चाहिए। इस सिद्धान्त का अभिप्राय, जो कि कुछ अस्पष्ट है, यह है कि प्रत्येक मनुष्य को अपने कार्य के अनुसार हिस्सा पाना चाहिए।

(५) दान का फेर लेना–यदि किसी पुण्य के कार्य के लिये कुछ दान किया जाय और यदि जिस कार्य के लिये द्रव्य दिया गया हो उस कार्य में वह न लगाया जाय तो दान फेर लिया जा सकता था। (८, २१२)

(६) वेतन न देना–इसके लिये कानून बहुत साधारण था अर्थात् मज़दूर जब तक प्रतिज्ञा के अनुसार अपना कार्य पूर्ण न करे तब तक उसे वेतन नहीं दिया जाता था। (८, २१७)

(७) प्रतिज्ञा का पालन न करना–प्रतिज्ञा करने के उपरान्त उसे भङ्ग करने के लिये बड़ा कड़ा दण्ड दिया जाता था, ऐसा अपराधी देश से निकाल दिया जाता था, कैद कर लिया जाता था, और उस पर चार चार सुवर्ण के छ निष्क और चांदी का एक शतमान दण्ड लगाया जाता था। (८, २१६, २२०)

(८) बिक्री और ख़रीद की हुई वस्तु को लौटाना–यह एक बड़ा अद्भुत नियम है कि ख़रीदने वाला वा बेचने वाला दस दिन के भीतर यदि चाहे तो बेची हुई वस्तु को लौटा सकता था। भाष्यकारों ने कहा है कि नियम केवल उन वस्तुओं के लिये था जो कि सहज में नष्ट नहीं हो सकती, यथाभूमि, तांबा इत्यादि। (८, २२२)

(९) पशुओं के स्वामियों और उनके दासों में झगड़े-पशुओं के स्वामी और उनके दासों में सम्भवतः बहुधा झगड़े उठते थे और इस विषय के नियम कुछ सूक्ष्मता के साथ वर्णन किए गए हैं। दिन के समय पशु की रक्षा का उत्तरदाता चरवाहा होता था और रात्रि के समय उसका स्वामी अर्थात् यदि रात्रि के समय वह स्वामी के घर में रहे। और यदि चरवाहे को किसी प्रकार की मज़दूरी न मिले तो वह दस में से एक गाय का दूध ले सकता था। जो पशु उसकी

असावधानी से खो जांय उनके लिये वह उत्तरदाता होता था। यथा यदि कोई भेड़िया बकरी और बकरों पर आक्रमण करे और चरवाहा उनकी रक्षा का यत्न न करे तो इस हानि के लिये वह उत्तरदाता होता था। प्रत्येक गांव और प्रत्येक नगर के चारों ओर चरागाह रखने का नियम था जिसका कि दुर्भाग्य वश आजकल लोप होगया है। गांव के चारों ओर १०० धनु चौड़ी भूमि चरागाह के लिये छोड़ी जाती थी और नगर के चारों ओर इस कार्य्य के लिये इसकी तिगुनी भूमि होती थी। यदि कोई पशु इस चरागाह में किसी बिना घिरे हुए खेतों के अन्न की हानि करे तो चरवाहा उसके लिये उत्तरदाता नहीं होता था। परन्तु इस चरागाह के बाहर के खेत घिरे हुए नहीं रहते थे और यदि पशु वहां तक चलाजाय और खेतों को हानि पहुंचावे तो प्रत्येक पशु पीछे सवा पणका दण्ड लगाया जाता था और उसके सिवाय जितनी हानि हो उसे भी देना पड़ता था। (८, २३०–२४१)

(१०) सीमा सम्बन्धी झगड़े–इस विषय के कानून से हमें उस समय के ग्रामों और खेतों की अवस्था का एक अद्भुत वृत्तान्त प्रगट होता है। भारतवर्ष में वर्ष भर में ज्येष्ठ (मई व जून) का महीना सबसे सूखा है और यह कहा गया है कि दो गावों के बीच की सीमाओं के सब झगड़ों का निर्णय इसी मास में होना चाहिए। ये सीमाएं प्रायः अश्वत्थ, किंशुक वा कोई दूसरे वृक्षों के द्वारा अथवा तालाब, कूएं, कुंज और सोतों द्वारा प्रगट की जाती थीं। सीमा का निर्णय करने के लिये छिपे हुए चिन्ह छोड़ दिए जाते थे और जहां दो सीमाएं मिलती थीं वहां पत्थर, हड्डियां, कंकड़ इत्यादि गाड़ दिए जाते थे।

जहां इन चिन्हों के द्वारा सीमा का निर्णय नहीं किया जासकता था वहां गांव के निवासियों की साक्षी ली जाती

थी, और उन लोगों से भी निर्णय न होने पर शिकारियों, बहेलियों, चरवाहों, मछुवाहों, सपेरों, मनरखों और बीनने वालों की साक्षी ली जाती थी। यदि इनमें से किसी प्रकार से सीमा का निर्णय न हो सके तो उस अवस्था में राजा के लिये कहा गया है कि अपने में से उदारता के साथ झगड़ा करने वाले गांवो में से किसी को भी जो हानि सम्भव जान पड़ती हो उसे पूरा करदे। (८, २४५–२६५)

(११) और (१२) मार पीट और बदनामी करना–अब हम फौजदारी के कानून के विषय पर आए और इसमें हमें फिर उस हानि कारक प्रणाली का प्रभाव मिलता है जिसने कि हिन्दू सभ्यता और जीवन की प्रत्येक बातों में अपना प्रभाव डाला है। ब्राह्मण यदि किसी क्षत्रिय की बदनामी करे तो उसे ५० पण का दण्ड लगता था, वैश्य की बदनामी करने के लिये २५ पण और शूद्र की बदनामी करने के लिये केवल १२ पण। परन्तु यदि शूद्र किसी ब्राह्मण की बदनामी करे तो उसकी जीभ काट लेनी चाहिए। और यदि वह किसी द्विजाति के नाम और जाति की निन्दा करे तो उसके मुंह में दस अंगुल लम्बा लोहे का कील गरम करके डालना चाहिए (८, २६८–२७१)। यह नहीं समझना चाहिए कि वास्तव में दण्ड इस तरह पर दिया जाता था या कोई ब्राह्मण न्यायकर्ता भी किसी शूद्र को, क्रोध में किसी ब्राह्मण को कटु वाक्य कहदेने के कारण इतना भारी दण्ड देकर अपने को कलंकित करता था। ब्राह्मण लोग वास्तव में जैसे थे उसकी अपेक्षा उन्होंने अपने को बुरा दिखलाया है और कानून जो कि बिचारे शूद्र के लिये निस्सन्देह कठोर था वह एक दम ऐसा जंगली नहीं था जैसा कि वह कहा गया है। "जिस इन्द्री से नीच जाति का कोई मनुष्य उच्च जाति के

किसी मनुष्य की हानि करे उस इन्द्रीको काट डालना चाहिए"-यह मनु की शिक्षा है (८, २७९)। परन्तु मनुका सत्कार करते हुए भी हम लोग इस बात में सन्देह कर सकते हैं कि उसके देशवासियों ने इस शिक्षा के अनुसार कार्य्य करके अपने को कभी कलंकित किया हो ?

बदनामी करने के लिये साधारण दण्ड १२ पण था (८, २६९) और इस प्रकार चोट पहुंचाने के लिये कि जिस से देह का चमड़ा कट जाय १०० पण। यदि माँस कट जाय तो उसके लिये ६ निष्क का दण्ड लगाया जाता था और यदि हड्डी टूट जाय तो अपराधी देश के बाहर निकाल दिया जाता था। (८, २८४)

हानि करने के लिये जितने की हानि हो उसी के बराबर दण्ड लगाया जाता था परन्तु यदि हानि थोड़े की हुई हो तो उसका पचगुना दण्ड लगाया जाता था। (८, २८८—२८९)

(१३ और १४) चोरी और डांका—चोरों को दण्ड देने के लिये बहुत ही अधिक उपाय किए जाते थे क्योंकि यदि राजा "चोरों को दण्ड दे तो उसके यश और राज्य की वृद्धि होती थी" (८, ३०२) और जो राजा सम्पत्ति की रक्षा नहीं करता और फिर भी अपना कर लगान और दण्ड लेता है वह शीघ्र नर्क में जायगा। (८, ३०७)

चोरों को भिन्न भिन्न दण्ड लगाये जाते थे अथवा उनको शारीरिक दण्ड दिया जाता था या उनका हाथ काट लिया जाता था। जब चोरी स्वामी के सामने (अर्थात् बलात) की जाती थी तो वह डांका कहलाता था। (८,३१९-३३२) बलात् चोरी करना एक बड़ा भारी अपराध समझा जाता था परन्तु जब कोई मनुष्य डकैतों से आक्रमण किया जाता तो

उस अथवा ऐसी अन्य अवस्थाओं में उसे अपनी रक्षा करने का अधिकार था। (८, ३४५—३५०)

(१५) व्यभिचार—यह अपराध भारतवर्ष में सदा से बड़ी घृणा की दृष्टि से देखा गया है और व्यभिचार करने वाले का यदि वह ब्राह्मण न हो तो प्राण दण्ड दिया जाता था "क्योंकि चारों जातियों की स्त्रियों की सदा बड़ी सावधानी से रक्षा करनी चाहिए। (८, ३५९) किसी अविवाहिता स्त्री का बिना इच्छा के सतीत्व नष्ट करने के लिये शारीरिक दण्ड दिया जाता था अथवा दो अंगुलियां काट ली जाती थीं और ६०० पण का आर्थिक दण्ड लगाया जाता था (८, ३६४, ३६७) परन्तु इससे भी अधिक भयानक दण्ड लिखे हैं। जो स्त्री किसी दूसरे को बिगाड़े उसे कोड़े लगाए जाते थे और आर्थिक दण्ड लगाए जाते थे। व्यभिचारिणी स्त्री कुत्तों से नुंचवाई जाती थी और व्यभिचारी मनुष्य अग्नि में जला दिया जाता था। (८, ३६९, ३७१, ३७२) परन्तु इसमें सन्देह है कि ये कानून कभी काम में लाए जाते हों।

आगे चल कर इससे कम कठोर दण्ड रक्खे गए हैं। जो शूद्र किसी द्विज जाति की स्त्री से व्यभिचार करे उसकी इन्द्री काट ली जाती थी। जो वैश्य अथवा क्षत्री किसी ब्राह्मणी से यह अपराध करे तो वह कारागार में भेजा जाता था अथवा उसे भारी आर्थिक दण्ड दिया जाता था। कोई ब्राह्मण यदि अपनी जाति की स्त्री से ऐसा व्यवहार करे तो उसे भारी आर्थिक दण्ड लगाया जाता था (८, ३७४-३७८) ब्राह्मण को "चाहे वह कैसाही अपराध क्यों न करे" कभी प्राण दण्ड नहीं दिया जाता था। "ब्राह्मण के वध करने से बढ़ कर इस पृथ्वी पर दूसरा पाप नहीं है"। (८, ३८०, ३८१)

फ़ौजदारी के कानूनों के अध्याय के अन्त में मनु ने कुछ फुटकर नियम दिए हैं। जो यज्ञ करने वाला अपने पुरोहित को छोड़ दे, वा जो पुरोहित अपने यज्ञ करने वालों को छोड़ दे, जो पुत्र अपने माता पिता को छोड़ दे, जो ब्राह्मण अपने पड़ोसियों को निमन्त्रण न दे और जो श्रोत्रिय दूसरे श्रोत्रियों को निमन्त्रण न दे वे सब आर्थिक दण्ड देने योग्य होते थे। बेइमान धोबियों और कपड़ा बुनने वालों के भी नियत दण्ड हैं। राजा वाणिज्य की सब वस्तुओं पर उनके मूल्य के अनुसार पांच रुपए सैकड़े का कर लगा सकता था। वह कुछ वस्तुओं की बिक्री का अधिकार केवल अपने ही हाथों में रख सकता था और जो लोग उन वस्तुओं को बेचें उनको दण्ड दे सकता था। वह नगर में आने वाली वस्तुओं और नगर से बाहर जाने वाली वस्तुओं पर कर और चुंगी लगा सकता था और यह भी कहा जा सकता है कि वह सब बिक्री की वस्तुओं का मूल्य स्थिर कर सकता था परन्तु इसे कभी किसी राजा ने नहीं किया है। राजा सब बटखरों और नापों को निश्चित करता था, घाट का कर निश्चित करता था, वैश्यों को व्यापार करने, रुपया उधार देने और भूमि जोतने बोने की आज्ञा देता था और शूद्रों को द्विजों की सेवा करने की आज्ञा देता था।

गुलाम सात प्रकार के कहे गए हैं अर्थात् युद्ध के कैदी, नित्य भोजन पर कार्य्य करने वाले, गुलाम की सन्तान, खरीदे हुए वा दूसरों के दिए हुए गुलाम और वे मनुष्य जो दण्ड पाने के बदले गुलाम बनाए गए हों। (८, ३८८-४१५)

(१६) पति और पत्नी—मनु इस विषय को स्त्रियों के मनुष्यों के आधीन होने के वर्णन से आरम्भ करता है और

इसने स्त्रियोंके विषय में कुछ कहावतें भी दी हैं जो कि कदाचित् उसके समय में समझी जाती हों परन्तु वे मनु के लिये अयोग्य हैं क्योंकि हम पहिले देख चुके हैं कि सब बातों पर विचार कर मनु ने स्त्रियों को एक उच्च और सत्कार योग्य स्थान दिया है।

हम देख चुके हैं कि मनु ने विधवा से सन्तान उत्पन्न करने की प्राचीन रीति के सम्बन्ध में किस भांति अपने ही वाक्यों का खण्डन किया है और इसमें कोई सन्देह नहीं हो सकता कि सन् ईस्वी के उपरान्त सर्व साधारण लोग इसी रीति के कैसे विरुद्ध थे। हम यह भी देख चुके हैं कि विधवा विवाह किस प्रकार घृणित होता जाता था, यद्यपि वह निस्सन्देह मनु के समय में भी प्रचलित था और बालविधवा के विवाह के लिये स्पष्ट आज्ञा दी गई है। (९, ६९) फिर मनु इस प्राचीन नियम को लिखता है कि स्त्री को अपने पति के लिये, यदि वह धर्म्म कार्य्य के लिये गया हो तो आठ वर्ष तक ठहरना चाहिए और यदि वह विद्या वा यश के उपार्जन के लिये गया हो तो उसे छः वर्ष तक और यदि सुख के लिये गया हो तो तीन वर्ष तक ठहरना चाहिए। एक भाष्यकार लिखता है कि इस समय के उपरान्त उसे दूसरा विवाह कर लेना चाहिए और यही इस प्राचीन नियम का अभिप्राय भी जान पड़ता है।

स्त्री को मदिरा पीने वाले पति के साथ घृणा नहीं करनी चाहिए परन्तु पागल वा जाती से निकाले हुए पति अथवा किसी ऐसे पति से जो रोग से पीड़ित हो, जो पापों के दण्ड के कारण होते हैं वह घृणा प्रगट कर सकती है। मदिरा पीने वाली स्त्री, राजद्रोही वा रोगी स्त्री, ऐसी स्त्री जिसे कि सन्तान न होती हो अथवा केवल कन्या हो, उसका पति दूसरा विवाह

कर सकता था (६, ७८-८१)। परन्तु इससे यह तात्पर्य्य नहीं है कि वह उस स्त्री को बिलकुल त्याग दे वरन् उस स्त्री को उसी ही घर में रखना चाहिए और उसका पालन करना चाहिए (६, ८३)

"परस्पर प्रीति तथा विश्वास मृत्यु तक होना चाहिए" यह पति और स्त्री के लिये सबसे बढ़ कर नियम है।

(१७) पैत्राधिकार-इस आवश्यक विषय का वर्णन १०० से अधिक सूत्रों में दिया है (६, १०४-२२०) परन्तु हमारे लिये यह आवश्यक नहीं है कि हम इस विषय के कानून का व्योरे वार वर्णन करें। पिता और माता की मृत्यु के उपरान्त भाई लोग सम्पत्ति को अपने में बराबर बराबर बाँट सकते थे (६, १०४) अथवा सबसे बड़े भाई के अधीन रह कर वे सब मिल कर रह सकते थे और इस अवस्था में बड़ा भाई ही सारी सम्पत्ति का प्रबन्ध करता था (६, १०५)। परन्तु भाइयों का जुदा होना निन्दनीय नहीं समझा जाता था वरन् इसके विरुद्ध वह प्रशंसनीय कहा गया है (६, १११)। सबसे बड़े और सबसे छोटे पुत्रों को संपत्ति के बँटवारे में कुछ अधिक भाग मिलता था (६, ११२-११७)। कुमारी बहिनों के लिये प्रत्येक भाई को अपने हिस्से का चौथाई देना चाहिए (६, ११८) परन्तु भाष्यकारों ने इसका अर्थ यह कहा है कि भाइयों को अपनी कुंआरी बहिनों के दहेज का प्रबन्ध करना चाहिए। अध्याय ६, सूत्र १२०, १४६ इत्यादि स्थानों में उसे पुत्र के लिये हिस्सा लिखा है जो कि बड़े भाई की स्त्री वा विधवा से छोटे भाई के द्वारा उत्पन्न हो परन्तु अन्यत्र मनु ने इस व्यवहार की निन्दा की है। फिर जिस मनुष्य को पुत्र न हो वह अपनी कन्या का उसके पति से यह कह कर नियुक्त कर सकता है,

कि उसकी जो पुरुष सन्तान उत्पन्न होगी वह मेरी अन्त्येष्टि क्रिया करेगी। और जब ऐसा किया जाता था तो पौत्र और नियुक्त कन्या के पुत्र में कोई भेद नहीं समझा जाता था (६, १२७, १३३)। ६, १४१ और २४२ में पुत्र गोद लेने का अधिकार दिया है।

सदा की नाईं मनु १२ प्रकार के पुत्रों के विषय में भी प्राचीन सूत्रकारों के नियमों को लिखता है, यद्यपि अपने समय में अपनी सम्मति के अनुसार मनु इनमें से अन्तिम ११ पुत्रों को "सच्चे पुत्र" के पलटे में बुरा प्रतिनिधि कहता है (६, १६१)। १२ प्रकार के पुत्र ये हैं—औरस अर्थात् विवाहिता स्त्री का पुत्र, क्षेत्रज अर्थात् किसी रोगी मनुष्य की स्त्री अथवा किसी विधवा से उत्पन्न किया हुआ पुत्र, दात्रिम अर्थात् गोद लिया हुआ पुत्र, कृत्रिम अर्थात् बनाया हुआ पुत्र, गूढोत्पन्न अर्थात् गुप्त रीति से उत्पन्न हुआ पुत्र जिसके पिता का पता न होने के कारण उसे उसकी माता के पति का पुत्र समझना चाहिए, अपविद्ध अर्थात् जिस पुत्र को उसके माता पिता ने त्याग दिया हो और दूसरा मनुष्य उसे पुत्र की भांति रक्खे, कानीन अर्थात् अविवाहिता स्त्री का पुत्र जो कि उस पुरुष का पुत्र समझा जाना चाहिए जो उस स्त्री के साथ पीछे विवाह करे, सहोढ अर्थात् उस स्त्री का पुत्र जिस का विवाह गर्भवती होने की अवस्था में किया जाय, क्रीतक अर्थात् मोल लिया हुआ पुत्र, पौनर्भव अर्थात् विधवा के दूसरे विवाह का पुत्र, स्वयं दत्त अर्थात् वह बालक जिसके माता पिता न हों और वह अपने को किसी दूसरे के पुत्र की भांति दे दे, और पारसव अर्थात् ब्राह्मण का किसी शूद्र स्त्री के साथ उत्पन्न हुआ पुत्र (६, १६७–१७८)।

इन बारहों प्रकार के पुत्रों में से प्रथम छः प्रकार के पुत्र सम्बन्धी और उत्तराधिकारी समझे जाते हैं, और अन्तिम छओं पुत्र केवल सम्बन्धी समझे जाते हैं (६, १५८) और इनसब पुत्रों में से एक के न होने पर उसके उपरान्त की श्रेणी का पुत्र पैत्राधिकार पाता था। (६, १८४) सन्तान, पिता और भाई के न होने पर मनुष्य की सम्पत्ति उसके सब से निकटवर्ती सम्बन्धी को मिलती थी जो कि तीन पीढ़ी के भीतर हो, और ऐसे सम्बन्धी के न होने पर किसी सकुल्य को, वा उसके उपरान्त धर्म के गुरु वा शिष्य को और उसके भी न होने पर ब्राह्मणों को मिलती थी। (६, १८७, १८८)

स्त्रीधन वा स्त्रियों की विशेष सम्पत्ति वह कही गई है जो कि विवाह की अग्नि के सामने अथवा विवाह में दी जाय अथवा जिसे पति प्रीति के चिन्ह की भांति अथवा भाई माता वा पिता उसे दे। (६, १६४)

माता की मृत्यु के उपरान्त उस माता के सब पुत्र और कन्या माता की सम्पत्ति को बराबर बराबर बांट लें। (६,१६२)

(१८) जूआ खेलना और बाजी लगाना इत्यादि—ये दोनों पाप राजाओं के राज्य को नाश करने वाले होते हैं; और इस लिये राजाओं को सम्मति दी गई है कि वे इन्हें अपने राज्य से दूर रक्खें। इस पाप के लिये शारीरिक दण्ड लिखा गया है (६, २२४) और इस पाप के करने वालों तथा नाचने वालों, गाने वालों, और नास्तिक लोगों अर्थात् बौद्धों को देश से निकाल देने के लिये भी लिखा है। (६, २२५)

जाल से राज्य आज्ञाओं को बनाने के लिए, मन्त्रियों को घूस देने के लिये, स्त्रियों बच्चों और ब्राह्मणों का बध करने के लिये और राज द्रोह के लिये प्राण दण्ड कहा गया है। (६,

२३२) गुरु की पत्नी के साथ व्यभिचार करने, मदिरा पीने, ब्राह्मण का धन चुराने या ब्राह्मण का वध करने के लिये सिर को दागने का दण्ड लिखा है। जो चोर चोरी की वस्तुओं और सेंध लगाने के औजारों के सहित पकड़ा जाय वह तथा जो लोग चोर को आश्रय देवें वे जान से मारे जा सकते थे। (९, २७०, २७१) डांकुओं, घर लूटने वालों, गिरहकटों तथा अन्य ऐसे ही लोगों के हाथ अथवा दो उङ्गलियां काट ली जानी चाहिए। (९, २७६, २७७)

तालाबों की बांध को नष्ट करने के लिये प्राण दण्ड अथवा कोई दूसरा कठोर दण्ड कहा गया है (९, २७९) और जो वैद्य अपने रोगियों की उलटी चिकित्सा करें उसके लिये अर्थ दण्ड लिखा है। (९, २८४) वाणिज्य की वस्तुओं में खोटी वस्तु मिलाने के लिये, और सब प्रकारकी दुष्टता के लिये, अन्न की बिक्री में ठगने के लिये, सुनारों की बेईमानी के लिये, और खेती के औजारों की चोरी के लिये भिन्न भिन्न दण्ड कहे गये हैं। (९, २५८, २९३)

कानून के विषय में दो अध्यायों के सिवाय मनु ने पाप के प्रायश्चित्त इत्यादि के लिये एक जुदा अध्याय दिया है और उसके विषय में बहुत थोड़ी बातों से विदित हो जायगा कि उस समय में भारी पाप कौन कौन समझे जाते थे।

प्रायश्चित्त—यहां फिर हमें यह उल्लेख मिलता है कि "ब्राह्मण का वध करना, सुरा पीना, ब्राह्मण का द्रव्य चुराना, गुरु की स्त्री से व्यभिचार करना और इन पापों के करने वाले मनुष्यों का संग करना ये सब से भारी पाप अर्थात् महा-पातक हैं।" (११, ५५) पाठक देखेंगे कि ये वेही महापातक हैं जिनको कि वशिष्ठ ने वर्णन किया है। इसके सिवाय और

भी पातक लिखे हैं जो कि इनके बराबर कहे गए हैं। ऐसे पातकों में ये हैं अर्थात् झूठी साक्षी देना, अपने गोत्र में व्यभिचार करना, कुमारी स्त्रियों को नष्ट करना, अपने माता पिता का त्याग और वेदों पर ध्यान न देना।

महापातकों से घट कर उपपातक हैं जिनमें हम इन पातकों को पाते हैं अर्थात् गृह्य अग्नि की असावधानी, गौ का बध, चोरी, ऋण न चुकाना, व्रात्य होकर रहना और अन्त में और बड़ी आश्चर्य जनक बात है कि—"खानों और कारखानों का निरीक्षण करना तथा बड़े बड़े यन्त्रों द्वारा कार्यों का करना जिसका कि भाष्यकारों ने यह अर्थ बतलाया है कि बांध बांधना वा चीनी की कल तथा इसी प्रकार की अन्य बड़ी बड़ी कल बनाना (९, ६०, ६७,) है। भारतवर्ष में जाति भेद के हानिकारक फल ने शिल्प और शिल्पकारों को नीच बना दिया परन्तु यह बड़े ही पश्चात्ताप और दुःख की बात है कि हिन्दू ग्रन्थकार को यह लिखना पड़ता है कि कल पुर्जों के काम ही वास्तव में पाप समझे जाते थे। मनुस्मृति के बनने के समय के सम्बन्ध में सर विलियम जोन्स साहब के समय से बहुत कुछ वादविवाद हुआ है परन्तु अब यह साधारणतः स्वीकार किया जाता है कि उसका जो संग्रह अब मिलता है वह ईसा के एक वा दो शताब्दी के पहिले वा पीछे का बना हुआ है। उसमें (१०, ४४) यवनों को चीन देश के लोगों तथा शक और कमभोज लोगों का उल्लेख है और इससे उसके बनने का समय काफी तरह से निश्चित होता है। यह ग्रन्थ, जैसा कि हम पहिले कह चुके हैं, भारतवर्ष के प्राचीन सूत्रों जिनके आधार पर यह बना हुआ है और पौराणिक समय के धर्म्म शास्त्र जिनका कि हम आगे के अध्याय में

वर्णन करेंगे, इनके बीच के समय का है। सूत्रों की नाईं वह किसी विशेष वैदिक समय से सम्बन्ध नहीं रखता परन्तु वह समस्त आर्य्यों का कानून है और धर्म्म शास्त्र के भी विरुद्ध मनु अपने समय तक हिन्दू त्रिमूर्ति वा पौराणिक कथाओं को नहीं जानता, मूर्ति पूजा को नहीं मानता और मन्दिरों तथा पुजेरियों को घृणा की दृष्टि से देखता है और वैदिक विधानों और यज्ञों का मण्डन करता है।

अध्याय १२

ज्योतिष और विद्या।

पूर्व अध्यायों में हम बौद्धकाल में हिन्दुओं के इतिहास और उनकी राजनीति की अवस्था, उनके शिल्प और गृहनिर्माण विद्या और उनके सामाजिक जीवन तथा नियमों का वर्णन कर चुके हैं। अब उस समय में उनकी विद्या की उन्नति के विषय में हमें कुछ वाक्य कहने हैं। दुर्भाग्य वश इस विषय में हमें जो सामिग्रियां मिलती हैं वे बहुत ही थोड़ी हैं—कदाचित् प्राचीन हिन्दू इतिहास के अन्य किसी समय से भी थोड़ी हैं।

इसके कारण भी स्पष्ट हैं। पांच वा छः शताब्दियों तक भारतवर्ष विदेशियों के आक्रमण और युद्ध का स्थान बना रहा और इस समय में साहित्य और शास्त्रों की जैसी उन्नति स्वाभाविक रीति पर होनी चाहिए न हो सकी। उस समय जो बातें विदित भी हुईं उनमें से अधिकांश बौद्ध प्रभाव के द्वारा हुईं और इसके पीछे के हिन्दू लेखकों ने उन बातों को रक्षित रखने में सावधानी नहीं की है। और अन्त में, इस समय में जिन शास्त्रों के जो ग्रन्थ बनाए गए थे उनका स्थान अधिकतर इसके उपरान्त के पौराणिक काल में बने हुए उत्तम ग्रन्थों ने ले लिया है। इन सब कारणों से बौद्ध काल के साहित्य और शास्त्रों का बहुत ही थोड़ा अंश अब प्राप्त है।

परन्तु फिर भी भारतवर्ष में बुद्धि विषय के उद्योग किसी समय में भी नहीं छोड़े गए थे और हिन्दू इतिहास के किसी समय में भी "विद्या सम्बन्धी अवकाश" कभी नहीं माना

गया। और बौद्ध समय में इस सम्बन्ध में जो उन्नति हुई थी उसके चिन्ह हम लोगों को अब तक मिलते हैं।

हम दार्शनिक काल के वृत्तान्त में हिन्दुओं के छ दर्शन शास्त्रों का वर्णन कर चुके हैं परन्तु यह स्मरण रखना चाहिए कि उनमें से कुछ दर्शनों यथा पातञ्जलि के योग और बादरायण व्यास के वेदान्त का प्रारम्भ बौद्ध काल ही में हुआ था और इसी काल में इन छओं दर्शनों में बहुत कुछ उन्नति की गई थी। इसके अतिरिक्त इस काल में पातञ्जलि ने पाणिनी के व्याकरण पर अपना प्रसिद्ध महाभाष्य लिखा है जो कि बौद्धकाल की उन्नति का एक स्मारक है।

धर्म सम्बन्धी ग्रन्थों में मनुस्मृति बौद्ध काल में बनाई गई थी और नालन्द तथा अन्य विद्यापीठों की बहुत सी बौद्धधर्म की पुस्तकें इस काल में बनीं। पद्य का हम लोगों को बहुत ही थोड़ा अंश प्राप्त है जो कि निश्चय रूप से इसी काल का बना हुआ है परन्तु फिर भी अर्वाचीन संस्कृत पद्य का आरम्भ इसी काल से हुआ है। गुप्त वंशी राजाओं के शिलालेखों से हमें विदित है कि इस समय में उस सुन्दर तथा गम्भीर पद्य की कदर की जाती थी, कविता का सत्कार राज सभाओं में किया जाता था और गुप्त वंश का सबसे बड़ा राजा समुद्रगुप्त जिसने कि चौथी शताब्दी की समाप्ति के लगभग राज्य किया स्वयम् कवि था और उसकी सभा के कवियों ने उसे कविराज की पदवी दी थी।

परन्तु बौद्धकाल में सबसे अधिक उन्नति ज्योतिष शास्त्र में हुई थी। हम पहिले देख चुके हैं कि ज्योतिष सम्बन्धी वेध वैदिक काल में ही किये जा चुके थे और ऐतिहासिक काव्य काल में चन्द्रराशिचक्र स्थिर किया गया था और अयन

सम्बन्धी विन्दुओं का स्थान देखा जा चुका था तथा अन्य बातें भी ध्यान पूर्वक देखी और लिखी जा चुकी थीं। परन्तु इन कालों अथवा दार्शनिक काल का भी ज्योतिष का कोई ग्रन्थ हम लोगों को अब नहीं मिलता। ज्योतिष का सब से प्राचीन ग्रन्थ जिसके विषय में कि हमें कुछ विदित है अथवा जो हम लोगों को अब प्राप्त है, बौद्ध काल का है।

हिन्दू ग्रन्थकारों ने १८ प्राचीन सिद्धान्त अर्थात् ज्योतिष के ग्रन्थ लिखे हैं, परन्तु उनमें से अधिकांश अब प्राप्त नहीं हैं। उनके नाम नीचे दिए जाते हैं—

१	पराशर सिद्धान्त	१०	मरिचि सिद्धान्त
२	गर्ग ,,	११	मनु ,,
३	ब्रह्म ,,	१२	अंगीरस ,,
४	सूर्य ,,	१३	रोमक ,,
५	व्यास ,,	१४	पुलिश ,,
६	वशिष्ठ ,,	१५	च्यवन ,,
७	अत्र ,,	१६	यवन ,,
८	कश्यप ,,	१७	भृगु ,,
९	नारद ,,	१८	सौनक वा सोम ,,

इनमें से कुछ सिद्धान्तों के संक्षिप्त विवरण से बौद्धकालके शास्त्रों की उन्नति का बहुत कुछ वृत्तान्त विदित हो जायगा और हम यह बात पहिले से कह देंगे कि हिन्दुओं ने इस काल में अधिकांश ज्योतिष शास्त्र का ज्ञान यूनानियों से प्राप्त किया जिन्हों ने कि इस शास्त्र की बड़ी सफलता के साथ उन्नति की थी।

प्रोफेसर वेबर साहब कहते हैं कि हिन्दू ज्योतिषियों में पराशर सबसे प्राचीन है और समयक्रम से उसके उपरान्त गर्ग है। पराशर के विषय में हमें इसके अतिरिक्त और कोई बात विदित नहीं है कि उसका नाम वेद से सम्बन्ध रखता है। वह ग्रन्थ जिसमें पराशर की शिक्षाएं दी हुई कही जाती हैं, पराशर तन्त्र के नाम से प्रसिद्ध था। पौराणिक समय में वह बड़े सत्कार की दृष्टि से देखा जाता था और बाराहमिहिर ने बहुधा इस ग्रन्थ के वाक्य उद्धृत किए हैं। इन अनेक उद्धृत वाक्यों को देखने से विदित होता है कि उनका अधिकांश, कम से कम उनका एक बड़ा अंश गद्य में लिखा है जो कि इस श्रेणी के ग्रन्थों के लिये एक विशेषता है। इसका बहुत सा भाग अनुष्टुप छन्द में है और इसमें आर्या छन्द भी है। भारतवर्ष के भूगोल जानने वालों के लिये उसमें एक पूरा अध्याय है जिसको कि बाराहमिहिर ने केवल रूप बदल कर परन्तु ज्यों का त्यों रख कर वृहत् संहिता के १४ वें अध्याय में दिया है। पराशर ने पश्चिमी भारतवर्ष में यवनों वा यूनानियों के होने का उल्लेख किया है जिससे विदित होता है कि इस ग्रन्थ का समय ईसा के २०० वर्ष के अधिक पहिले का नहीं है।

गर्ग के विषय में हमें इससे कुछ अधिक वृत्तान्त विदित है और वह उन हिन्दू ग्रन्थकारों में है जिनसे कि हमें भारतवर्ष में ईसा के पहिले दूसरी शताब्दी में यूनानियों के आक्रमण का कुछ वृत्तान्त विदित होता है। वह यून जाति के विद्वानों का भी सम्मान करता था यद्यपि वे म्लेच्छ समझे जाते थे। उसका निम्नलिखित वाक्य प्रसिद्ध है और वह बहुधा उद्धृत किया जाता है—"यवन लोग (यूनानी लोग) म्लेच्छ हैं परन्तु वे लोग इस शास्त्र (ज्योतिष शास्त्र) को अच्छी तरह से जानते हैं। इस

लिये उन लोगों का ब्राह्मण ज्योतिषियों से कहीं बढ़कर ऋषियों की नाईं सत्कार किया जाता है ।

अपने ग्रन्थ के ऐतिहासिक अंश में गर्ग चार युगों का उल्लेख करता है जिसमें से महाभारत के युद्ध के समय से वह तीसरे युग की समाप्ति और चौथे युग का प्रारम्भ होना लिखता है । इसके उपरान्त उसने मगध के शिशुनाग वंश और फिर मौर्य्य वंश के राजाओं का उल्लेख किया है । सालिसुक का उल्लेख करते हुए (जिसको कि हम देख चुके हैं कि अशोक के उपरान्त चौथा राजा था) गर्ग कहता है " इसके पीछे पापात्मा साहसी यूनानी लोग साकेतु (अवध) पाञ्चाल देश और मथुरा को अधीन करने के उपरान्त कुसुमध्वज (पटने) में पहुंचेंगे । पुष्पपुर (पटना) लिए जाने पर सब देशों में निस्सन्देह उलट फेर हो जायगा ।"

संस्कृत ग्रन्थों में ऐतिहासिक घटानाओं का उल्लेख इतना दुर्लभ है कि गर्ग के ज्योतिष के ग्रन्थ में ईसा के पहिले दूसरी शताब्दी में बेक्ट्रिया के यूनानी लोगों का पटने तक भारतवर्ष को जीत लेने का जो वृत्तान्त मिलता है उसके लिये हम उसके अनुगृहीत हैं । बहुत से पाठकों को विदित होगा कि प्रसिद्ध विद्वान डाक्टर गोल्डस्टूकर साहब ने यूनानी लोगों का अवध पर आक्रमण करने का वृत्तान्त पातञ्जलि के ग्रन्थ से खोज निकाला है और इसीसे उन्होंने योग दर्शन और महाभाष्य के रचयिता पातञ्जलि का समय निश्चित किया है ।

परन्तु अब गर्ग के विषय में सुनिए । "अजेय यवन लोग (यूनानी लोग) मध्य प्रदेश में नहीं रहेंगे । उन लोगों में एक बड़ा कठोर और भयानक युद्ध होगा । तब इस युग के अन्त में यूनानियों का नाश होने के उपरान्त सात प्रबल राजा अवध में

राज्य करेंगे।" इसके उपरान्त यह उल्लेख है कि यूनानियों के उपरान्त लुटेरे शक लोग बड़े प्रबल हुए, और हमें यह जानने में बहुत कम कठिनाई है कि वे शक लोग वेही यूची लोग थे जिन्होंने कि ईसा के १३० वर्ष पहिले वेक्ट्रिया के राज्य को नष्ट किया था। वे नए विजयी लोग अपनी लूट पाट करते रहे और यहां पर गर्ग का इतिहास समाप्त हो जाता है। उपरोक्त बातों से डाक्टर कर्न साहब का गर्ग का समय ईसा की पहिली शताब्दी में निश्चित करना ठीक है।

अब हम कुछ अन्य सिद्धान्तों के विषय में लिखेंगे अर्थात् उन पांच सिद्धान्तों के विषय में जो कि पञ्च सिद्धान्त के नाम से प्रसिद्ध हैं और जिनके आधार पर छठीं शताब्दी में वाराह-मिहिर ने अपनी पञ्चसिद्धान्तिका लिखी है। वे पांचों सिद्धान्त ये हैं अर्थात् ब्रह्म वा पैतामह, सूर्य्य वा सौर, वशिष्ठ, रोमक, और पुलिश।

जान पड़ता है कि प्राचीन ब्रह्म वा पैतामह सिद्धान्त का पूर्ण स्थान ब्रह्मगुप्त के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'स्फुट ब्रह्मसिद्धान्त' ने ले लिया है। एलबरूनी ने इस स्फुट ब्रह्म सिद्धान्त की एक प्रति ११ वीं शताब्दी में पाई थी और उसने उसका उल्लेख अपने भारतवर्ष के वृत्तान्त में किया है।

सूर्य्य सिद्धान्त बड़ा प्रसिद्ध है परन्तु उस मूल ग्रन्थ में इतनी बार परिवर्तन हुआ है और वह इतनी बार संकलित किया गया है कि मूल ग्रन्थ अब हम लोगों को प्राप्त नहीं रह गया है। हम इस मूल ग्रन्थ के बनने की तिथि के विषय में इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं कह सकते कि वह बौद्धकाल में बना होगा। और यह ग्रन्थ अन्तिम बार अपने आधुनिक रूप

में कब बनाया गया इसके विषय में भी हम केवल इतनाही कह सकते हैं कि वह पौराणिक काल में बनाया गया होगा।

बाराहमिहिर का भाष्यकार, उत्पल दसवीं शताब्दी में हुआ और उसने अपने समय के सूर्य सिद्धान्त से छ श्लोक उद्धृत किए हैं और डाक्टर कर्न साहब ने दिखलाया है कि उनमें से एक भी आज कल के सूर्य सिद्धान्त में नहीं मिलता। फिर भी "आज कल का सूर्य सिद्धान्त उस ग्रन्थ का पुनरूप मात्र है जिसे कि बाराहमिहिर ने अपना एक प्रमाण माना है।"

आधुनिक सूर्य सिद्धान्त में १४ अध्याय हैं और उसमें ग्रहों के मध्यम स्थान और वास्तविक स्थान, समय का विषय, सूर्य और चंद्र ग्रहण, ग्रहों और नक्षत्रों के योग, ग्रहों और नक्षत्रों के प्रकाशवृत्तीय उदय और अस्त, चन्द्रमा की कला और उसके स्कन्धोंके स्थान, सूर्य और चन्द्रमा की क्रान्ति, ज्योतिष सम्बन्धी यन्त्रों के बनाने की रीति, जगत की उत्पत्ति और भिन्न भिन्न प्रकार के समय का उल्लेख है।

एलबरूनी वशिष्ठ सिद्धान्त को विष्णु चन्द्र का बनाया हुआ कहता है, परन्तु ब्रह्मगुप्त कहता है कि इस प्राचीन ग्रन्थ को विष्णु चन्द्र ने फिर से शोधा था और यह बात ठीक जान पड़ती है। आज कल वशिष्ठ सिद्धान्त के नाम से जो ग्रन्थ वर्तमान है वह निसन्देह आधुनिक समय का है।

रोमक सिद्धान्त को ब्रह्मगुप्त और एलबरूनी दोनों ही, श्री सेन का बनाया हुआ कहते हैं। आज कल एक जाली और आधुनिक समय का बना हुआ रोमक सिद्धान्त मिलता है जिसमें ईसामसीह की जन्मपत्री, बाबर के राज्य का वर्णन तथा अकबर के सिन्धविजय करने का वृत्तान्त दिया है?

पुलिश सिद्धान्त अलबरूनी को विदित था। उसने उसकी एक प्रति ली थी और वह इस ग्रन्थ को यूनानी पालिस का बनाया हुआ कहता है। प्रोफेसर वेबर साहब का मत है कि यह यूनानी पालिस वही है जो कि पोलस अलकज़ान्ड्रीनस के नाम से प्रसिद्ध है और जिसने इसागाज नामक ज्योतिष का ग्रन्थ लिखा है। परन्तु डाक्टर कर्न साहब इस बात में सन्देह करते हैं पर उनका भी यही मत है कि पुलिस यूनानी था।

येही पांचों प्रसिद्ध सिद्धान्त हैं जिन्हें कि वाराहमिहिर ने छठीं शताब्दी में संकलित किया था। डाक्टर कर्न साहब उनका समय गर्ग और वाराहमिहिर के बीच में अर्थात् सन् ८५ ईसवी के लगभग निश्चित करते हैं।

बौद्धकाल में अन्य शास्त्रों के भी ग्रन्थ वर्तमान थे जो कि अब हम लोगों को अप्राप्त हो गए हैं। उदाहरण की भांति हमें यह बड़े हर्ष के साथ विदित होता है कि उस समय में नग्न-जित ने गृह निर्माण विद्या, पत्थर की मूर्ति बनाने की विद्या, चित्रकारी तथा अन्य ऐसेही शिल्पों के विषयों के ग्रन्थ बनाए थे।

जान पड़ता है कि बौद्धकाल में, जब कि समस्त देश में चिकित्सालय स्थापित किए गए थे वैद्यक शास्त्र ने बड़ी उन्नति की थी। हिन्दू वैद्यक शास्त्र के प्रसिद्ध ग्रन्थकर्त्ता चर्क और सुश्रुत इसी समय में हुए हैं परन्तु उनके ग्रन्थ पौराणिक समय में फिर से संशोधित किए हुए जान पड़ते हैं और इसलिये हम पौराणिक समय में उनका वर्णन करेंगे।

कुछ बहुत ही उपयोगी व उत्तम पुस्तकें।

सचित्र श्रीकृष्णचन्द्र का जीवन चरित्र।

इस पुस्तक को पंजाब के लीडर लाला लाजपत रायजी की लिखी उर्दू पुस्तक से हिन्दी में बा० केशव प्रसाद सिंह ने अनुवाद किया है। यह पुस्तक हिन्दी में नये ढङ्ग की है। इसमें ग्रन्थकार ने शास्त्रों के प्रमाणों और युक्तियों द्वारा इस बात को सिद्ध कर दिया है कि श्रीकृष्ण चन्द्र कैसे राजनैतिक और नीति कुशल सच्चरित्र थे। इस में श्रीकृष्ण के जन्म से अंत पर्य्यन्त का हाल लिखा गया है। रंगीन व सादे चित्र हैं। मूल्य १।)

धर्म और विज्ञान सजिल्द।

यह पुस्तक हिन्दी के प्रेमी श्री० राजा साहब भिङ्गा की अनुमति और सहायता से प्रकाशित हुई है। इसको "लक्ष्मी" के सम्पादक लाला भगवानदीन जी ने विलायत के मशहूर लेखक मिस्टर ड्रेपर की लिखी एक अंग्रेज़ी पुस्तक "Conflict between religion and science" का अनुवाद किया है। रायल अठपेजी २८७ पन्ने की पुस्तक है। विलायत के अंधविश्वास को दूर करने में बड़ी मदद दी है। विषय (१) विज्ञान का मूल कारण (२) क्रिश्चियन धर्म्म का मूल, राज्यबल पाकर उसका सम्बन्ध (३) ईश्वर की एकता के सिद्धान्त के विषय का झगड़ा (४) दक्षिण में फिर से विज्ञान का प्रचार (५) आत्मा के तत्व के विषय में झगड़ा, उत्पत्ति और लय का सिद्धान्त (६) इस विषय का झगड़ा कि जगत की आकृति कैसी है (७) पृथ्वी की आयु के विषय का वाद विवाद (८) सत्य के विषय का झगड़ा (९) विश्व के शासन के विषय का वाद विवाद (१०) वर्तमान सभ्यता के साथ रोमन, ईसाई धर्म्म का सम्बन्ध (११) वर्तमान सभ्यता के साथ विज्ञान का सम्बन्ध (१२) समीपस्त सङ्कट। मूल्य २।=)